मासिक बुलेटिन • अंक 4
जुलाई–अगस्त 1996 • दो रुपये • आठ पृष्ठ

दुनिया के मजदूरो एक हो!

बिगुल

साझा सरकार का साझा बजट :

मेहनतकश अवाम के लिए कपट ही कपट

'बिगुल' के पिछले अंक में (जून 1996) हमने लिखा था - "सरकार चाहे जिसकी बने, नई आर्थिक नीतियां जारी रहेंगी।" पिछले दो महीने के घटनाक्रम ने इस बात को बिल्कुल सच साबित किया है। इस बीच दो सरकारें बनीं - एक की तेरह दिन में ही तेरहीं हो गई और दूसरी अटकते-भचकते चल रही है। पर जनविरोधी आर्थिक नीतियों को लागू करने के मामले में दोनों ही सरकारों में कोई अन्तर नहीं दिखाया।

देवगौड़ा की साझा सरकार के पहले जुड़वा बच्चों - न्यूनतम साझा कार्यक्रम और बजट - के जन्म पर आजकल बड़े सोहर गाये जा रहे हैं। मजे की बात यह है कि सोहर गाने वालों में आई.एम.एफ.-विश्व बैंक जैसी साम्राज्यवादी संस्थाओं और देशी पूंजीपतियों से लेकर संसदीय वामपंथी तथा तमाम 'प्रगतिशील' लेखक-पत्रकार तक शामिल हैं। कांग्रेस और नरसिंह राव कह रहे हैं कि इसमें उन्हीं की नीतियों को आगे बढ़ाया गया है, तो उधर संसदीय कम्युनिस्ट दावा ठोंक रहे हैं कि उन्होंने मजदूरों-किसानों-गरीबों की भलाई के लिए कुछ कर दिया है।

कोई पूछ सकता है कि ये कैसा कमाल है? अजी कमाल कुछ नहीं है। हुआ सिर्फ इतना है कि नई आर्थिक नीति की जहरीली खिचड़ी में थोड़ा नरमी का घी डाल दिया गया है, थोड़ी लोकप्रियता की छौंक लगा दी गई है। इसके लिए तो 'नई बोतल में पुरानी शराब' का मुहावरा भी नहीं चलेगा। इसमें तो सिर्फ नरसिंह राव-मनमोहन सिंह वाली बोतल को ही पोंछकर लेबिल बदल दिया गया है।

> हुआ सिर्फ इतना है कि नई आर्थिक नीति की जहरीली खिचड़ी में थोड़ा नरमी का घी डाल दिया गया है, थोड़ी लोकप्रियता की छौंक लगा दी गई है। इसके लिए तो 'नई बोतल में पुरानी शराब' का मुहावरा भी नहीं चलेगा। इसमें तो सिर्फ नरसिंह राव-मनमोहन सिंह वाली बोतल को ही पोंछकर लेबिल बदल दिया गया है।

साझा सरकार के पहले बजट पर पूंजीवादी राजनीतिक पार्टियों की मौन सहमति और पूंजीवादी-साम्राज्यवादी लुटेरों की खुशी तो समझ में आती है, परन्तु अपने संसदीय वामपंथी इस कदर चुप्पी साध जायेंगे इसकी उम्मीद मज़दूरों को नहीं थी। उस पर भी तुर्रा यह कि संसदीय वामपंथ के एक प्रेमी कलमघसीट यह लिखते हैं कि "बजट में सार्वजनिक क्षेत्र में बदलाव पर जोर तो है लेकिन बदलाव किस दिशा में हो स्पष्ट नहीं है।"

मनमोहन सिंह की आर्थिक नीतियों पर चलते हुए, इस बजट में सार्वजनिक क्षेत्रों के शेयर बेचने, "बीमार" सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों को प्रोफेशनल ग्रुप्स के हवाले करने का, वित्तीय क्षेत्र में सुधार करने का और बिजली उत्पादन के क्षेत्र में बजट कम करने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। क्या यह दिशा जानने के लिए काफी नहीं है? यह बात अलग है कि यदि हमारे सी.पी. आई. और सी.पी. एम. मार्का बुद्धिजीवी चिदम्बरम की ही दिशा में आंख पर पट्टी बांध कर चल रहे हैं तो उन्हें दिशाभ्रम होगा ही। जनता को कोई भ्रम नहीं। बजट के पहले श्री चिदम्बरम का नीतिगत बयान, तेल मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि, प्राइवेट रेल चलाने की अनुमति आदि ने बजट की दिशा इतनी स्पष्ट कर दी थी कि अंधों को भी दिखने लगे।

बजट में कुछ खास अच्छाइयां बताई जा रही है। एक तो गरीबों और गरीबी उन्मूलन पर विशेष जोर दिया

पेज 7 पर जारी

साझा सरकार की काली टोपी पर टंके दो लाल फुंदने

पूंजीवादी अखबारों में कलम घसीटने वाले ढेरों 'वामपंथी' बुद्धिजीवी हैं जो वास्तव में 'वाम नाम सत्य' कर चुके हैं और इकन्नी-दुवन्नी के लालच में ढेरों झूठ उगल रहे हैं। साझा सरकार के बनते ही ये खुशी से पगला गये हैं और पूंजीपतियों की लूट में सर्वहारा की मुक्ति का भव्य दर्शन कर रहे हैं।

इन्हें खुशी है कि अक्टूबर क्रान्ति के रास्ते न सही, टीटो, अलब्राउडर और खुश्चेव के रास्ते पर चलकर दो लाल बांकुड़े सत्ता के अन्तःपुर में प्रवेश पा ही गये। इन्हीं में से हैं एक बुद्धिजीवी श्री प्रफुल्ल बिदवई जिन्होंने देवगौड़ा की सरकार में शामिल श्री इन्द्रजीत गुप्त एवं श्री चतुरानन मिश्र को दो लाल सितारों की संज्ञा दी है। जबकि सच यह है कि किसी कोने से ये लाल सितारे जैसे नहीं दिखते; हां पूंजीवादी सरकार की काली टोपी में टंके हुए दो लाल फुंदने जैसे जरूर दिखते हैं। पूंजीपतियों के कंधे पर बैठकर लाल मिर्ची खाकर पूंजीवादी गीत गाने वाले, झड़े हुए पंखों वाले ये दो बूढ़े तोते हैं जिनमें देखने-सुनने के लिहाज से कोई आकर्षण नहीं बचा है।

कभी ये अपनी लाल-लाल बातों से जनता को ठगा करते थे, लेकिन किस्मत का खेल कुछ ऐसा रहा कि शीशे की दीवारों से बने सत्ता के अंतःपुर में दाखिल होने के पहले इन्हें अपना लाल लबादा उतारना पड़ा। अब इनका सारा नंगापन जनता देख लेगी।

वैसे संसदीय मार्ग से राज्य सत्ता पर काबिज होने के बारे में मार्क्सवाद की स्थापना बहुत स्पष्ट है -

"सिर्फ शोहदे या मूर्ख ही यह सोच सकते हैं कि सर्वहारा को पूंजीपति वर्ग के जूए के नीचे, उजरती दासता के नीचे किये चुनावों में बहुमत प्राप्त करना चाहिए और सत्ता बाद में प्राप्त करनी चाहिए। यह मूर्खता या पाखण्ड की इन्तहा है, वह वर्ग संघर्ष और क्रान्ति के स्थान पर पुरानी व्यवस्था के अधीन और पुराने अधिकारों के साथ चुनाव को अपनाना है।"

— लेनिन

पूंजीवादी कायदे कानून के तहत चुनाव में हिस्सा लेकर संसदीय मार्ग से सर्वहारा के राज्यसत्ता पर काबिज होने का दिवास्वप्न दिखाने वाले ये पहले मदारी नहीं हैं। लासाल, बर्नस्टीन, काउत्सकी, टीटो, अलब्राउडर, खुश्चेव शीशे की दीवारों से बने सत्ता के

पेज 8 पर जारी

भीतर के पृष्ठों पर...

मजदूरों में एक अति लोकप्रिय रचना
मकड़ा और मक्खी

"संसदीय मार्ग" का खण्डन

आजादी शान्ति के रास्ते से नहीं क्रान्ति के रास्ते से मिलती है

नारी सभा का पन्ना

मजदूरों द्वारा आत्महत्या नहीं पूंजीवाद द्वारा उनकी हत्या
छंटनी के कुल्हाड़े से नई आर्थिक नीति की बलिवेदी पर

'बिगुल' के पिछले अंक में हमने ग्वालियर के जे०सी० टेक्सटाइल मिल की बंदी के चलते फाकाकशी के शिकार मजदूरों और लखनऊ की स्कूटर इण्डिया फैक्टरी के छंटनीशुदा मजदूरों की आत्महत्या की खबरें दी थी।

मजदूरों का खून मानवभक्षी साम्राज्यवादियों और देशी लुटेरों की प्यास और बढ़ाता जा रहा है। उदारीकरण और निजीकरण की बलिवेदिका पर पूंजी की देवी की प्यास बुझाने के लिए कुर्बानियों का सिलसिला जारी है। यहां हम पूंजीवादी पत्रिका 'इण्डिया टुडे' (30 जून 1996) में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति पर प्रकाशित एक रिपोर्ट का हिस्सा ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं:

"भारत में, पांडिचेरी में आत्महत्या की दर सबसे ज्यादा, पूरे देश के औसत का सात गुना है। इसकी एक वजह इस केन्द्रशासित प्रदेश में ऐसे बहुत सारे प्रवासी मजदूरों का होना है, जो पड़ोसी राज्य तमिलनाडु से काम की तलाश में यहां आते हैं। इनमें से बहुत से मजदूर रोजगार की अनिश्चित स्थिति के चलते अपना संतुलन बरकरार नहीं रख पाते। दो साल पहले जब एक बड़ी कंपनी ने 1400 मजदूरों की छंटनी कर दी थी तो पांडिचेरी के जवाहरलाल इंस्टीट्यूट आफ पोस्टग्रेजुएट मेडिकल रिसर्च ने एक अध्ययन में पाया कि इनमें आधे से ज्यादा लोगों में आत्महत्या की प्रवृत्ति पैदा हो गई।

इस अध्ययन के संयोजक और संस्थान में मनोरोग विज्ञान के सहायक प्रोफेसर डा०के०ई० सदानंदन उन्नी कहते हैं, "मानो वे मजदूर किसी अंधी गली में घुस गये और अपनी दुर्दशा से उबरने का उनके पास कोई चारा नहीं रह गया था।"

पेज 6 पर जारी

आपस की बात

❐

'बिगुल' प्रवेशांक एवं अंक-2 मिला। प्रयास सराहनीय है। साम्राज्यवादी हमले एवं नयी आर्थिक नीति के प्रतिरोध में कामगार-किसान-खेत मजदूरों के संघर्ष के समाचार नियमित प्रकाशित करें।

हमारे देश में कामगार आंदोलन की एक लम्बी लड़ाकू परंपरा रही है, उसे दस्तावेज के रूप में छापें। जाति-धर्म-सांप्रदायिक फासिस्ट आदि से भी दो-दो हाथ करना अनिवार्य है, वरना अखबार सिर्फ आर्थिक सवालों तक सीमित बन सकता है।

– सुधीर ढवले, मुम्बई

❐

'बिगुल' का अंक मिला। बुलेटिन बढ़िया है। यहां से भी यथासम्भव सहयोग की कोशिश रहेगी।

– आलोक भट्टाचार्य, मुम्बई

❐

'बिगुल' की तीन प्रतियां आप मेरे पास भेज दिया करें। बाद में इनकी संख्या बढ़ाएंगे।

– हरियश राय, अहमदाबाद

❐

'बिगुल' के तीनों अंक मिले। हम इसे नियमित रूप से प्राप्त करना चाहते हैं। भारत में एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण के बारे में विचारों का आदान-प्रदान जरूरी है।

– सुभाष ऐकट, खड़गपुर

❐

'बिगुल' का जून अंक मिला। बहुत दिनों के बाद सही क्रांतिकारी दिशा पढ़कर खुशी हुई। मेरा सुझाव है कि यदि अपनी बात लिखते समय जनचेतना (जो कि फ़िलहाल कम विकसित है) के धरातल का ध्यान रखें तो अच्छा होगा।

– सुरेश प्रताप सिंह, बस्ती

❐

पत्र का नाम 'बिगुल' - नया भी है, सार्थक भी, दिशा-निर्देशक भी।

साज-सज्जा, सफाई-छपाई भी सुरुचिपूर्ण और कलात्मक है। रचनाएं अनिवार्य और क्रांतिधर्मी - बधाई। प्रगतिशीलता और अधिकारों की प्राप्ति की दिशा में 'बिगुल' प्रेरित करता है, करता रहेगा।

– रामेश्वर द्विवेदी
मेघालय

❐

मजदूरों के बीच क्रांतिकारी राजनीतिक चेतना के प्रसार और विकास के लिए 'बिगुल' के तेवर के एक अखबार की जरूरत थी। आज के घनघोर विचारधारात्मक संकट के इस दौर में 'बिगुल' जैसे क्रांतिकारी अखबारों की कितनी जरूरत और उसका कितना महत्व है हम इसे महसूस करते हैं। फिलहाल दस प्रतियां भेजें ताकि इस क्षेत्र में इसके प्रचार-प्रसार का काम हो सके।

– नीरद जनवेणु, पूर्णिया, बिहार

❐

'बिगुल' नियमित रूप से मिल रहा है। मजदूर वर्ग व नई पीढ़ी की चेतना के स्तर को ऊंचा उठाने में 'बिगुल' एक अच्छी भूमिका निभायेगा, ऐसी हम आशा करते हैं।

– शकुन्तला, देहरादून

❐

'बिगुल' मजदूर वर्ग की चेतना को उन्नत करने का एक बहुत जरूरी काम कर रहा है। मजदूर आन्दोलन को ऐसे अखबार की जरूरत है।

– जितेन्द्र राठौर, पटना

❐

पिछले तीन अंकों से हमारे वर्कशाप के गेट पर 'बिगुल' बेचने के लिए साथी आते हैं। आपके अखबार का हमें इंतजार रहता है क्योंकि इसमें मजदूरों की चेतना को बढ़ाने पर जोर दिया जाता है। हमारे नेता कई साल से हम लोगों को खाली छोटी-मोटी मांगों के लिए उलझाकर रखे हैं। कभी-कभी तो लगता है कि यह सब झूठ है कि मजदूर दुनिया को बनाने वाला है, टुकड़ा मांगते-मांगते हम भिखारी होते जा रहे हैं। मजदूर आज भी अपने हक के लिए लड़ने के लिए तैयार हैं। लेकिन उनको सच्चाई बताने वाला कौन है? खाली एक अखबार से कैसे होगा?

– एक मजदूर, कैरिज एंड वैगन वर्कशाप, लखनऊ

❐

'बिगुल' का नाम भी आकर्षक, वैचारिक प्रतिबद्धता तथा स्थितियों-परिस्थितियों से जूझने की प्रबल आकांक्षा, पाक्षिक अखबार में है। लेकिन साहित्य का हिस्सा पूरी तरह गायब। है भी तो वही पुरानी कविता का पुनर्मुद्रण। कहीं ऐसा तो नहीं समझ रहे हैं कि आज की कविता की धारा चुक गई है। देश-दुनिया और समाज के अन्दर बहुत से आन्दोलन चल रहे हैं उस पर भी नजर जानी चाहिए।

– महेश अंजुम, बोकारो

फर्क

मेरे हाथ की ये पांच उंगलियां
तुमने जिनमें सुईयां चुभोयीं,
रक्त पिया बार-बार
तब-तब कभी हल्के कभी दमदार
झेले हैं तुमने भी झटके
और खायी है मुंहकी बार-बार
साक्षी है तेरे ही चेहरे का इतिहास
जिन पर टंके हैं हमारी इन्ही
उंगलियों के
ताजे पुराने, रक्तिम, दहकते निशान
हो रहा होगा तुम्हें अबतक
उन तमाचों का एहसास
देखो, ये सिर्फ उंगलियां ही नहीं
देखा ही कहा है तुमने इनका
विराट-रूप?
एक ही काफी है देखो
भूगोल बदलने के लिये
तत्क्षण रच सकती है दूसरी
अपना ही एक और इतिहास
तीसरी की तो क्षमता ही मत पूछो
जिसकी हर पोर पर सार-गर्भित है
विश्व दर्शन और अलग एक साहित्य
चौथी में हो रहे हैं निर्मित
नया एक ब्रह्माण्ड एक नया विज्ञान
बदल सकती है पांचवी
तेरा सम्पूर्ण गणित तत्क्षण
स्थापित कर सकती है फिर से
नये मूल्य
नये समीकरण, परिमेय
और नये तथ्य, नये आंकड़े
इसलिए याद करो उन तमाचों को
और ठण्डे दिमाग से सोचो तो
ये उंगलियां बन्द हो जायं तो क्या हो!
मुट्ठियों के बनने का भी
कोई कारण, कुछ तर्क होता है
यकीन करो
तमाचे और घूंसे में, सचमुच
बहुत बड़ा फर्क होता है।

– ए०के०दत्ता
महाप्रबन्धक (विधि) कार्यालय
पूर्वोत्तर रेलवे, गोरखपुर

पाठक साथियो,

'बिगुल' आपका अपना अखबार है। इसकी हर कमी-बेशी के बारे में खुलकर और साफ-साफ हमें बताइये। इसमें अभी बहुत सी कमियां हैं, इनको दूर करने में हमारी मदद कीजिये और इसमें जो बातें आपको अच्छी लगीं, उनके बारे में भी बताइये जिससे उनपर हम और ध्यान दे सकें। अपनी बातें, राय-सुझाव, अपने सवाल और अपनी आलोचना हमें इस पते पर लिखकर भेजें।

सम्पादक 'बिगुल'
द्वारा - ओ०पी०सिन्हा
69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ

मजदूरों की वेदना में छिपा है एक तूफानी इंकलाब

दुनिया के मेहनतकश मजदूर, किसान और नौजवानों अगर तुम जीना चाहते हो मान-सम्मान स्वाभिमान के साथ, अगर पाना चाहते हो अपना बुनियादी हक तो इस पुरानी सड़ी-गली व्यवस्था - अत्याचार व भ्रष्टाचार का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रशासन के खिलाफ एक नया इंकलाब शुरू करके उसे नेस्तनाबूद कर दो। सदियों से तुम सब पर अत्याचार, अनाचार, शोषण उत्पीड़न रूपी विनाश के बादल बरस करके तुम्हारे इस जीवन व सुनहरे भविष्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। अगर इसपर भी चेतनाशून्य बने रहोगे तो वह दिन दूर नहीं जब इन्हीं लुटेरों का अधिकार तुम्हारी हर सांस पर होगा। यह कितने शर्म की बात है कि चुनाव के अखाड़े में खड़े भ्रष्ट सुअरों को अपना भाग्यविधाता समझकर उनको अपना भाग्य सौंप देते हो और तब स्वयं अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहाते हो। और वह भ्रष्ट सुअर, संसदरूपी सुअरबाड़े में बैठकर अत्याचार करके तुम्हारे इंसान होने का मजाक उड़ाता है। अभी हाल ही में इस सुअरबाड़े के सुअरों के एक सरदार ने पांच वर्ष तक देश की जनता पर अत्याचार, अनाचार, शोषण व भ्रष्टाचार एवं घोटालों का एक नया इतिहास कायम किया। क्या ऐसे दुर्दिनों को देखने के लिए ही अपने श्रम का मोती व लहू बहाते रहोगे? आखिर कब तक?

आज यह किसी एक व्यक्ति की आवाज नहीं है। यह दुनिया के उन तमाम गरीब मजलूमों, मजदूर-किसानों सर्वहारा वर्ग की आत्मा की आवाज है जो देश के भाग्य विधाता होकर भी इन सड़ी-गली व्यवस्थाओं के कारण अपने भाग्य पर आंसू बहाने के लिए मजबूर है। यह आवाज है उनकी जो शोषित है, अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार से उत्पीड़ित है। उनकी इसी वेदना में छिपा है एक क्रांतिकारी तूफानी इंकलाब।

– लालचंद, बसखारी,
अम्बेडकरनगर

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

(1) 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

(2) 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

(3) 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को यह नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

(4) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर, ''कम्युनिस्टों'' और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनवाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

(5) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

- शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा० दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ
- जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर
- विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर
- विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर–273402
- ओमप्रकाश, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड़, निशातगंज, लखनऊ
- जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5–7)
- सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, काज़मी चैम्बर्स, 5 पार्क रोड, लखनऊ
- राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ
- अरविन्द सिंह, 123, बिडला छात्रावास, बी०एच०यू० वाराणसी
- डा. डी०के० सचान, (शस्य वैज्ञानिक), A–308 आवास विकास (गंगापुर), रामपुर–244901
- प्रो. प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263145
- राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र
- अमृतलाल पाण्डेय, निकट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बसखारी, अम्बेडकरनगर
- एतकाद अहमद, डिपार्टमेंट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- संतोष शर्मा, Q-No -L/61K, बरौनी रेलवे कालोनी, बरौनी, बेगूसराय
- चन्द्रकेतु नरायण शर्मा, एडवोकेट, सांचीपट्टी, बागगली गाछी, स्थान–पो–हाजीपुर, जि–वैशाली
- नीरद जनवेणु, 'प्रतीक्षा', मधुबनी–चूनापुर रोड, पूर्णिया, बिहार
- दीपशिखा पत्रिका मंडप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय, पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, मुजंफ्फरपुर
- मैत्रेयी साहित्य संगम, सर्वे आफिस के सामने, लालबाग के.डी.एस. दरभंगा–846004
- अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव द्वारा शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, मेंहसी, पूर्वी चम्पारण
- जनार्दन थापा, लुकसान बाज़ार पो.कैरन जि. जलपाई गुड़ी –735205
- डा.हरियश राय, ए–205 सुजल अपार्टमेंट, सेटेलाइट रोड, रामदेव नगर, अहमदाबाद–380054
- पुस्तक–पत्रिका बिक्री–वितरण केन्द्र डिल्ली बाजार चढ़ाव के पास (निकट पदम कन्या स्कूल), काठमांडू
- विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाईन, बुटवल, लुम्बनी, नेपाल
- जलजला पुस्तक सदन, घमवोजी चौक, नेपालगंज बांके, नेपाल

पिछले दिनों 'बिगुल' को मुम्बई में रहने वाले एक मार्क्सवादी बुद्धिजीवी आत्माराम जी का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने 'बिगुल' में प्रकाशित सामग्री की आलोचना प्रस्तुत करते हुए बहुत सारे सुझाव दिये हैं। चूंकि इस पत्र में कही गई बहुत सी बातें एक क्रान्तिकारी मजदूर अखबार के उद्देश्य और स्वरूप के बारे में बुनियादी सवाल उठाती हैं, इसलिए हम अपने पाठकों के लिए श्री आत्माराम का पत्र और उसका विस्तृत जवाब प्रस्तुत कर रहे हैं। — सम्पादक

इतने ही लाल... और इतने ही अन्तरराष्ट्रीय की आज जरूरत है

प्रिय साथी आत्माराम जी,

बिगुल के "गहरे लाल रंग" से आपकी आंखों को पीड़ा पहुंची और इसके "ज्यादा" और "महज" अंतरराष्ट्रीयवादी चरित्र की गंध से आपके नथुने सिकुड़ गये। हमें अफसोस हुआ!

पर हम आपकी शिकायत का सबब नहीं जान पाये। माफ कीजियेगा! "इतना गहरा लाल रंग!" आपके खयाल से इसे कितना हल्का कर दिया जाये? कहीं आप इसे भगवा के करीब तो नहीं ले जाना चाहते हैं? हमें अभी पिछले ही दिनों पता चला कि आपके बम्बई में कुछ लोग ऐसा कर रहे हैं। वे भाजपा-शिवसेना को राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि मानते हैं और साम्राज्यवाद की दलाल कांग्रेस से लड़कर राष्ट्रीय जनवादी क्रांति करने के लिए उनके साथ मोर्चा बनाने का 'काल' दे रहे हैं। उनके सिद्धांतकार महोदय बाल ठाकरे के अखबार 'सामना' में कालम लिखकर "मा-ले वादियों" को पानी पी-पीकर कोसते रहते हैं और मजदूर वर्ग को संगठित करने के बजाय भारत के छोटे उद्योगपतियों के संकट से परेशान करवटें बदलते रहते हैं!

साथी, मजदूरों के सच्चे हरावलों को गहरे लाल रंग से न डरना चाहिए न ही बिदकना चाहिए।

आपके खयाल से मार्क्सवाद-लेनिनवाद से वफादारी दिखाने का मतलब है भारत के मजदूर-किसानों से कुछ भी लेना-देना न होना। या यूं कहें कि मजदूर-किसानों से यदि कुछ लेना-देना है तो मार्क्सवाद-लेनिनवाद से बेवफाई करनी होगी। आपका यह विलोमानुपाती नियम गले के नीचे उतारना शायद नये नुस्खों-नियमों के भूखे किसी प्रोफेसर या अहमक के लिए ही मुमकिन होगा। भारत के मजदूर-किसानों के प्रति वफादारी का तकाजा है कि सर्वहारा क्रांति के विज्ञान -- मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रति वफादार रहा जाये। खुद आपकी ही नसीहत है कि 'नई समाजवादी क्रांति की ज्वाला भड़काने' (उद्धरण चिन्हों के द्वारा हमारे "अतिउत्साह" पर व्यंग्य करने की कोशिश की है आपने शायद!) के लिए "एक सही पार्टी चाहिए और उस पार्टी के नेतृत्व में मजदूर-किसानों का संगठन होना चाहिए।" मगर जनाब, मार्क्सवाद- लेनिनवाद का ककहरा जानने वाला भी जानता है कि एक सही पार्टी-निर्माण और गठन की दिशा में आगे बढ़ते हुए सर्वोपरि प्रश्न विचारधारा का है। सी.पी.आई.-सी.पी.एम. के संशोधनवाद के दौर ने और उनके अबतक के आचरण ने, वामपंथी दुस्साहसवादी भटकाव के चलते मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिविर के बिखराव ने, देङ सियाओ-पिङ के बाजार-समाजवाद ने, रूस और पूर्वी यूरोप में संशोधनवादियों की सत्ता के पतन और नवक्लासिकी पश्चिमी ढंग के खुले पूंजीवाद के आगमन की परिस्थितियों ने और भांति-भांति के नववामपंथियों तथा पश्चिमी कलमघसीटों ने अलग-अलग ढंग से सर्वहारा क्रांति की विचारधारा पर जितना धूल और राख फेंका है और व्यापक मजदूर अवाम को जिस हद तक उसकी विचारधारा से दूर किया है, उसे देखते हुए, हम समझते हैं कि मजदूर वर्ग के बीच (और किसानों एवं प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समुदाय के बीच भी) मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा का, विश्व सर्वहारा क्रांतियों की विस्मृत उपलब्धियों का और राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय वर्ग संघर्षों के भुला दिये गये अनुभवों का व्यापक और घनीभूत प्रचार आज एक सर्वभारतीय पार्टी के पुनर्गठन के उद्यम का एक बुनियादी और अनिवार्यतः महत्वपूर्ण पहलू है। दक्षिणपंथी और "वामपंथी" अवसरवाद से सही मार्क्सवाद को अलगाना और क्रांति के सच्चे मार्गदर्शक सिद्धान्त से व्यापक मेहनतकश अवाम को परिचित कराना आज का सबसे पहला काम है। जाहिरा तौर पर, यह प्रचार महज अखबार निकाल कर और भाषण देकर नहीं हो सकता। इस अखबार की प्रासंगिकता ही उन व्यावहारिक कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के लिए है जो मजदूरों के बीच काम करते हैं, उनके रोजमर्रे की लड़ाइयों -- आर्थिक संघर्षों और राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्षों में हिस्सा लेते हैं, उनके जन-संगठनों में काम करते हैं। कुछ वाम-नाम बुद्धिजीवियों की धारणा है कि एक सही पार्टी बनाने के लिए सिद्धान्त और विचारधारा पर, "लाल" और "अंतरराष्ट्रीय" भाषा में बहस तो सिर्फ क्रांतिकारी ग्रुपों के नेतृत्वों के बीच और मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों के बीच होनी चाहिए और अपढ़-गंवार मजदूरों के लिए तो सिर्फ उनके आर्थिक संघर्षों और जीवन के हालात की रिपोर्टिंग वाले 'ट्रेड यूनियन मुखपत्र' निकाले जाने चाहिए। यह एक कूपमण्डूकतापूर्ण, किताबी निठल्ले मार्क्सवादी की या एक मेंशेविक की ही धारणा हो सकती है। पार्टी-निर्माण और गठन के लिए मजदूर वर्ग के बीच क्रांतिकारी विचारधारा के प्रचार और इसके लिए एक मजदूर अखबार की जरूरत, प्रकृति एवं दायित्व के बारे में लेनिन ने मेंशेविकों के साथ बहस करते हुए काफी साफ-साफ लिखा है। आप जैसे सुधी व्यक्ति को भला मैं कैसे यह राय दूं कि उसे भी जरा पढ़ लें! या हो सकता है आपके लेखे वह सबकुछ आज 'आउटडेटेड' हो चुका हो!

अंतरराष्ट्रीयतावादी होने से न जाने क्यों आपको इतना गुस्सा आता है? "महज" जोड़ने से आपका क्या मतलब है? क्या 'बिगुल' के तीनों अंको की सामग्री "महज अंतरराष्ट्रीयतावादी" है? न जानें आप अंतरराष्ट्रीयतावाद से क्या समझते हैं? सच तो यह है कि सर्वहारा अंतरराष्ट्रीयतावाद और मजदूर आंदोलन में अंधराष्ट्रवादी भटकावों पर अभी तक हम एक भी लेख नहीं दे पाये जिसका हमें अफसोस है। जहां तमाम वाम बुद्धिजीवियों की आत्मा डा० राम विलास शर्मा की तरह भारत-व्याकुल और अतीत-व्याकुल हो रही हो; जहां बहुतेरे मा-ले संगठन मजदूर वर्ग से (और किसानों से भी) अधिक (बल्कि उसे छोड़कर) राष्ट्रीयता की मुक्ति के बारे में चिंतित हो (और यहां तक कि कुछ तो सिर्फ केरल या तमिलनाडु में तरह भाजपा-शिवसेना की खड़ाऊं पूजने लगे हों; उस देशकाल में हम तो समझते हैं कि सर्वहारा वर्ग को उसके अंतरराष्ट्रीयतावादी चरित्र और कार्यभार से परिचित कराना बहुत जरूरी है।

मजदूर क्रांति के चरित्र और कार्यभार बताने के लिए छापे गये लेनिन की पुस्तिका के अंश, मई दिवस पर दी गई सामग्री या जन्मदिन के अवसर पर गोर्की पर छापे गये लेख, पेरू और बोलीविया में संघर्ष की रिपोर्ट या माओ-लेनिन के उद्धरणों से आपको 'बिगुल' कुछ ज्यादा ही अंतरराष्ट्रीय लगने लगा (वैसे ऐसी सामग्री कुल छपी सामग्री के एक चौथाई से भी कम है, तीन चौथाई सामग्री देश की राजनीति और गांवों-शहरों की मेहनतकश आबादी की जिन्दगी जैसे विषयों पर ही केन्द्रित है)! मार्क्स, लेनिन, माओ के विचारधारात्मक महत्व के लेखों-उद्धरणों को राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय की श्रेणी में बांटना मूर्खता ही कहलायेगी। दूसरे देशों के मजदूर आंदोलनों-संघर्षों पर रपट और मार्क्स-लेनिन-माओ के लेखों के बीच फर्क करना होगा। "देसीपन" के ऐसे ही कुछ दुराग्रहियों को आज मार्क्स-लेनिन के विचार "यूरोसेण्ट्रिक" लगने लगे हैं। (उनके खयाल से बुद्ध के विचार भी 'इण्डोसेण्ट्रिक' और माओ के 'साइनोसेण्ट्रिक' हों शायद!)

आपने याद दिलाया है कि "हमारा ज्यादातर मजदूर-किसान अभी उतना अंतरराष्ट्रीय नहीं हुआ है।" बिल्कुल सही बात है। अगर हो गया होता तब तो अंतरराष्ट्रीयतावाद के प्रचार की कोई जरूरत नहीं होती। "उतना अंतरराष्ट्रीय" नहीं है, तभी तो उसके "राष्ट्रवादी" भ्रांतियों-पूर्वाग्रहों से लड़ने की और सर्वहारा वर्ग एवं सर्वहारा क्रांति के अंतरराष्ट्रीयतावादी चरित्र और कार्यभार के ज्यादा से ज्यादा प्रचार की जरूरत है!

'बिगुल' का गहरा लाल रंग यदि आपको (चाहे व्यंग्य करने के लिए ही सही!) 1905 से 1917 की रूसी क्रांति की याद दिलाता है, तो यह गर्व की बात है हमारे लिए। मगर हमारे इस उद्यम में आपको "लाल-लाल दिखावा" लगता है तो हम कुछ नहीं कर सकते। हां, बिना किसी लाल-लाल दिखावे के आप मजदूर वर्ग के बीच प्रचार और संगठन की जो भी कार्रवाइयां कर रहे हों, उनके अनुभवों से हमें तथा 'बिगुल' के पाठकों को अवश्य शिक्षित कीजियेगा। बिना अंतरराष्ट्रीय और लाल-लाल दिखावे के आप भारतीय जनता को लामबन्द करने के लिए अपने एक एक लफ्ज का इस्तेमाल कैसे कर रहे हैं और एक सही पार्टी-निर्माण के लिए क्या कुछ कर रहे हैं, अवश्य सूचित कीजियेगा। 'बिगुल' पर हम जो 'द्रव्य और श्रम' व्यर्थ खर्च कर रहे हैं, उसकी चिन्ता के लिए धन्यवाद! सिर्फ यह बता देना चाहते हैं कि

(1) गांवों-शहरों के मजदूरों के बीच यह सांगठनिक-राजनीतिक कार्यों के एक औजार के रूप में निकाला जा रहा है,

(2) इसका वितरण औद्योगिक मजदूरों के अतिरिक्त खेत मजदूरों और गरीब किसानों में भी होता है,

(3) 'बिगुल' लेकर गजदूरों के बीच जाने वाले साथियों और टोलियों को उनसे सकारात्मक प्रतिक्रिया और ठोस सुझाव बड़े पैमाने पर मिल रहे हैं और,

(4) तीन अंकों में इसकी प्रसार संख्या तीन गुनी हो गई है।

बेहतर तो यह होता कि 'बिगुल' के पीछे निहित जो बोध और धारणा हमने प्रवेशांक के विशेष सम्पादकीय ('एक नये क्रांतिकारी मजदूर अखबार की जरूरत') में दिया है; और 'बिगुल' के जो उद्देश्य घोषित किये हैं, आप सामान्य नसीहतें देने और झाड़ पिलाने के बजाय उसकी आलोचना प्रस्तुत करते और हमारी सोच के भटकावों को रेखांकित करते। आशा है, आप आगे ऐसा करेंगे और हमारी बहस जारी रहेगी।

— सम्पादक

●

कुछ ज्यादा ही लाल.... कुछ ज्यादा ही अन्तरराष्ट्रीय

साथी डा० दूधनाथ

सलाम्!

आपके सम्पादन में प्रकाशित 'बिगुल' के दो अंक मिले धन्यवाद!

दोनों अंक पढ़े। अंक अन्तरराष्ट्रीय स्तर के हैं। अंकों में जरूरत से ज्यादा मार्क्सवाद-लेनिनवाद है और मसला यह है कि क्या वाकई ये अखबार हिन्दुस्तान के मजदूरों के लिए निकाला गया। जबकि इन अंको में यदा-कदा कहीं-कहीं हिन्दुस्तान दिखायी देता है।

ऐसा क्यों किया जाये। यह काम तो इस तरह लगता है जैसे कि हम मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रति अपनी वफादारी दिखा रहे हैं, हमें भारत के मजदूर-किसानों से क्या लेना देना। दूसरा मसला यह कि हमारा ज्यादातर मजदूर-किसान अभी उतना अंतरराष्ट्रीय नहीं हुआ है, जितना आप खुद हैं और समझते हैं। बहरहाल रेल मजदूरों के बारे में जानकारी और संघर्ष के बारे में जो छपा है बेहतर है।

इतना सुंदर अखबार, इतना गहरा लाल रंग, मानो 1905 से 1917 की रूसी क्रांति की याद दिलाता है - जबकि यह लाल-लाल दिखावा - भारतीय मजदूरों के संघर्ष में कोई खास मदद करता दिखायी नहीं देता।

कृपया, जहां तक 'नई समाजवादी क्रांति की ज्वाला भड़काने' का सवाल है उसके लिए एक सही पार्टी चाहिए और उस पार्टी के नेतृत्व में मजदूर-किसानों का संगठन होना चाहिये। हम सभी जानते हैं, हमारा देश सही अर्थों में एक सही पार्टी की जरूरत महसूस करता है और एक आप हैं जो हर लफ्ज को अंतरराष्ट्रीय बनाये चले जा रहे हैं - अगर यह आपकी राजनैतिक लाइन है तो भी संवाद होना चाहिए और अगर महज जज़्बात है तो भी बहस की जरूरत है - हमारा हर लफ्ज इस मुल्क की मजदूर-किसान, मध्यमवर्ग और साधारण जनता के प्रबोधन और उसके संघर्ष को लामबंद करने के लिए होना चाहिए।

इतिहास (सिवाय भारत के) में घटित घटनाओं को दुबारा छापकर आप बहुत बड़े मार्क्सवादी हो सकते हैं परंतु उससे मजदूरों व गरीब जनता का कोई भला नहीं होने वाला।

विचारणीय मुद्दा है - मजदूरों के लिए निकलने वाला अखबार का हर लफ्ज मजदूरों के लिए, उनकी समस्याओं के लिए और भारतीय परिस्थितियों में उसके टास्क को सम्बोधित हो।

और अगर आपने द्रव्य और श्रम खर्च करने का बीड़ा उठा ही लिया है तो उसका इस्तेमाल मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार के लिए कम और मजदूर-किसानों से सरोकार रखने वाले संघर्षों के लिए ज्यादा हो। मैं उम्मीद करता हूं आप गौर करेंगे। बिगुल को इण्डियन वर्किंग क्लास ओरियन्टेड बनाना चाहिए न कि महज अंतरराष्ट्रीयवादी!

बिगुल की बेहतरी में

— आत्माराम, मुम्बई

''संसदीय मार्ग'' का खण्डन

सी.पी.आई. और सी.पी.एम. के समर्थन तथा संयुक्त मोर्चा की सतमेल खिचड़ी पकाने के लिए उनके द्वारा की गई भारी भागदौड़ के चलते दिल्ली में देवगौड़ा सरकार के बनने तथा सी.पी.आई. के दो वरिष्ठतम नेताओं के सरकार में दो अत्यन्त महत्वपूर्ण पद सम्हाल लेने से बहुत से लोगों को यह आस बंधी है कि अब संसद के दरवाजों से होता हुआ समाजवाद पधारने ही वाला है। पूरा नहीं तो शायद समाजवाद के कुछ छींटे ही पड़ जायें। कई भूतपूर्व और वर्तमान 'वामपंथी' लेखक व पत्रकार इन दिनों अखबारों-पत्रिकाओं में यह लिखते नहीं अघा रहे हैं कि ये लाल बांकुड़े किस तरह सरकार को कुछ अच्छे कदम उठाने के लिए मजबूर कर दे रहे हैं। ऐसा माहौल बनाया जा रहा है जैसे कि धीरे-धीरे करके एक दिन ऐसा आएगा जब चुनाव के बाद सरकार वामपंथियों की होगी और संसदीय रास्ते से, सरकारी दफ्तरों से होता हुआ, समाजवाद आ जायेगा। ऐसे लोग या तो शातिर बदमाश हैं, या फिर नासमझ, अनपढ़ और अन्धे। विश्व इतिहास की थोड़ी भी समझदारी, मार्क्सवाद की बुनियादी शिक्षाओं का ज्ञान और भारत के संसदीय कम्युनिस्टों के आचरण पर एक नजर इसे साफ करने के लिए काफी है।

ज्यादा दूर जाने की भी जरूरत नहीं है। पश्चिम बंगाल में करीब दो दशक से सरकार चला रहे (कामरेड!) ज्योति बसु वहां कितना समाजवाद लाये हैं यह वहां के छंटनीशुदा, बेरोजगार, भूखों मर रहे मजदूरों से और थानों में बलात्कार की शिकार स्त्रियों से पूछा जा सकता है। वैसे तो ज्योति बाबू कुछ साल पहले खुद ही घोषणा कर चुके हैं, ''हम राइटर्स बिल्डिंग (बंगाल का सचिवालय) में सरकार चलाने आये हैं, क्रान्ति करने नहीं।''

मार्क्सवादियों का स्पष्ट मानना है कि पूंजीपति वर्ग शान्तिपूर्ण तरीके से कभी अपना लूट-खसोट भरा शासन नहीं छोड़ेगा। केवल बलात क्रान्ति करके ही मजदूरों-किसानों का राज कायम किया जा सकता है। इतिहास ने भी इसे बार-बार सही साबित किया है।

मजदूर वर्ग के नेताओं ने शुरू से ही, हमेशा संसदीय मार्ग की ओर भटकने वाले गद्दारों के खिलाफ तीखा संघर्ष चलाया है और उनके खोखले तर्कों का भण्डाफोड़ किया है। पूंजीवादी संसद के हाल में लटक रहे छींके में रखी मलाई की हांड़ी के लालच में लार टपकाते हुए क्रान्ति के रास्ते से विश्वासघात करके भागने वालों की एक लम्बी कतार रही है — काउत्स्की, अलब्राउडर, टीटो, ख्रुश्चेव आदि-आदि। ज्योति बसु, सुरजीत, इन्द्रजीत वगैरह तो उन घाघों के अदना से पिछलग्गू भर हैं।

हम यहां पर 'बिगुल' के पाठकों के लिए माओ त्से-तुङ के नेतृत्व में रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ चलाई गई बहस के दस्तावेज का एक अंश छाप रहे हैं। इस अंश में संसदीय मार्ग से समाजवाद लाने के तर्कों का बेहद असरदार ढंग से खण्डन किया गया है।

— सम्पादक

"संसदीय मार्ग" के विचार का, जिसका दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों ने प्रचार किया था, लेनिन ने पूरी तरह खण्डन कर दिया था और काफी समय पहले ही बदनाम हो चुका था। लेकिन ख्रुश्चेव की नजर में, दूसरे विश्वयुद्ध के बाद संसदीय मार्ग अचानक फिर मान्य बनता दिखाई देता है।

क्या यह सच है? नहीं, कतई सच नहीं है।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं ने बार-बार यह साबित कर दिया है कि पूंजीवादी राज्य-मशीनरी का मुख्य अंग सशस्त्र बल है, संसद नहीं। संसद तो महज पूंजीवादी शासन का आभूषण और आवरण है। संसदीय प्रणाली को अपनाना या ठुकराना, संसद को कम या ज्यादा अधिकार देना, किसी एक या दूसरी किस्म का चुनाव कानून बनाना - इन सब विकल्पों को चुनते समय हमेशा पूंजीवादी शासन की जरूरतों और उसके हितों को ध्यान में रखा जाता है। जब तक इस फौजी-नौकरशाही मशीनरी पर पूंजीपति वर्ग का कब्जा रहेगा, तब तक या तो सर्वहारा द्वारा "संसद में स्थायी बहुमत" प्राप्त करना ही असम्भव होगा, अथवा यह "स्थायी बहुमत" अविश्वसनीय साबित होगा। "संसदीय मार्ग" से समाजवाद की प्राप्ति बिल्कुल असम्भव है और महज धोखा है।

पूंजीवादी देशों में लगभग आधी कम्युनिस्ट पार्टियां अब भी गैर कानूनी हैं। चूंकि इन पार्टियों को कोई कानूनी दर्जा प्राप्त नहीं है, इसलिए उनके द्वारा संसदीय बहुमत प्राप्त करने का सवाल ही नही उठता।

मिसाल के लिए, स्पेनी कम्युनिस्ट पार्टी भीषण आतंक में रहती है तथा उसके पास चुनाव लड़ने का मौका नहीं है। यह बड़े दुर्भाग्य और खेद की बात है कि इबारूरी जैसे स्पेनी कम्युनिस्ट नेता भी स्पेन में "शान्तिपूर्ण संक्रमण" की बात कहते समय ख्रुश्चोव का अनुसरण कर रहे हैं।

जिन पूंजीवादी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों को कानूनी करार दिया गया है और जहां वे चुनाव में हिस्सा ले सकती हैं, वहां पूंजीवादी चुनाव कानूनों द्वारा लगाई गई तमाम अनुचित पाबन्दियों के कारण पूंजीवादी शासन के अन्तर्गत बहुमत प्राप्त करना उनके लिए बड़ा कठिन है। और यदि उन्हें चुनाव में बहुमत प्राप्त हो भी जाये, तो भी पूंजीपति वर्ग चुनाव कानूनों में संशोधन करके या अन्य उपायों से उन्हें संसद के अन्दर सीटों का बहुमत प्राप्त करने से रोक सकता है।

मिसाल के तौर पर दूसरे विश्वयुद्ध से अब तक फ्रांस के इजारेदार पूंजीपतियों ने चुनाव कानून में दो बार संशोधन किया, और दोनों ही बार फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा संसद में प्राप्त की जाने वाली सीटों को काफी घटा दिया। 1946 के संसदीय चुनाव में फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी को 182 सीटें प्राप्त हुईं। लेकिन 1951 के चुनाव में इजारेदार पूंजीपतियों द्वारा चुनाव कानून में संशोधन किये जाने के परिणामस्वरूप सीसी कम्युनिस्ट पार्टी की सीटें काफी घट कर सिर्फ 103 रह गई, अर्थात उसे 79 सीटों का घाटा हुआ। 1956 के चुनाव में फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी ने 150 सीटें प्राप्त की लेकिन 1958 के संसदीय चुनाव के पहले इजारेदार पूंजीपतियों ने फिर एक बार चुनाव कानून में संशोधन कर डाला, जिसका नतीजा यह हुआ कि फ्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा प्राप्त की गई सीटों की संख्या बेहद घटकर सिर्फ 10 रह गई, यानी उसे 140 सीटों का घाटा हुआ।

यदि किसी खास परिस्थिति में कोई कम्युनिस्ट पार्टी संसद में सीटों का बहुमत प्राप्त भी कर ले या चुनाव में जीतने की वजह से सरकार में शामिल भी हो जाये तो इससे संसद या सरकार का पूंजीवादी स्वरूप नहीं बदल जाएगा और इसका मतलब पुरानी राज्य मशीनरी को चकनाचूर करना और नई राज्य मशीनरी की स्थापना करना तो बिल्कुल भी नहीं होगा। पूंजीवादी संसदों या सरकारों पर निर्भर रह कर बुनियादी सामाजिक परिवर्तन करना बिल्कुल असम्भव है। प्रतिक्रियावादी पूंजीपति वर्ग राज्य मशीनरी को अपने कब्जे में रखकर चुनाव को रद्द कर सकता है, संसद को भंग कर सकता है, कम्युनिस्टों को सरकार से बर्खास्त कर सकता है, कम्युनिस्ट पार्टी को गैर कानूनी करार दे सकता है तथा जनता और प्रगतिशील शक्तियों का दमन करने के लिए बर्बर शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

उदाहरण के लिए 1946 में चिली की कम्युनिस्ट पार्टी ने पूंजीवादी रेडिकल पार्टी को चुनाव जीतने में उसका समर्थन किया था तथा वहां एक मिलीजुली सरकार बनाई गई थी, जिसमें कम्युनिस्ट भी शामिल थे। उस समय चिली की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता इतने आगे बढ़ गये थे कि उन्होंने इस पूंजीपति नियंत्रित सरकार को "जनता की जनवादी सरकार" का नाम दे डाला था। लेकिन एक साल से भी कम समय में, पूंजीपति वर्ग ने उन्हें सरकार छोड़ने पर मजबूर कर दिया, कम्युनिस्टों की व्यापक धर-पकड़ शुरू कर दी तथा 1948 में कम्युनिस्ट पार्टी पर पाबन्दी भी लगा दी।

जब कोई मजदूरों की पार्टी पतन के गड्ढे में गिर जाती है और पूंजीपति वर्ग की चाकरी करने लगती है, तो यह हो सकता है कि पूंजीपति वर्ग उसे संसद में बहुमत प्राप्त करने और सरकार बनाने की इजाजत दे दे। कुछ देशों की पूंजीवादी सामाजिक-जनवादी पार्टियों की हालत ऐसी है। लेकिन ऐसी हालत से सिर्फ पूंजीपति वर्ग की तानाशाही की ही सुरक्षा होती है, और वही मजबूत होती है; इससे एक उत्पीड़ित और शोषित वर्ग के रूप में सर्वहारा की स्थिति न बदलती है और न बदली ही जा सकती है। ऐसे तथ्य महज संसदीय मार्ग के दिवालिएपन को ही साबित करते हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं से यह भी जाहिर होता है कि यदि कम्युनिस्ट नेता संसदीय मार्ग पर विश्वास करने लगें और "संसदीय जड़वामनवाद" के लाइलाज मर्ज के शिकार हो गए, तो वे न सिर्फ कहीं के नहीं रहेंगे, बल्कि अनिवार्य रूप से संशोधनवाद के दलदल में जा फंसेंगे तथा सर्वहारा के क्रांतिकारी कार्य को बरबाद कर डालेंगे।

पूंजीवादी संसदों के प्रति सही रुख अपनाने के सम्बन्ध में एक ओर मार्क्सवादी-लेनिनवादियों और दूसरी ओर अवसरवादियों-संशोधनवादियों के बीच हमेशा से बुनियादी मतभेद रहा है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादियों का हमेशा से यह मत रहा है कि किसी खास परिस्थिति में सर्वहारा पार्टी को संसदीय संघर्ष में भी भाग लेना चाहिए तथा संसद के मंच को पूंजीपति वर्ग के प्रतिक्रियावादी स्वरूप का भण्डाफोड़ करने के लिए, जनता को शिक्षित करने के लिए और क्रांतिकारी शक्ति संचित करने में मदद देने के लिए इस्तेमाल करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर संघर्ष के इस कानूनी रूप का इस्तेमाल करने से इन्कार करना गलत होगा। लेकिन सर्वहारा पार्टी को सर्वहारा क्रांति की जगह संसदीय संघर्ष को कभी नहीं देनी चाहिए। अथवा इस भ्रम में कभी नहीं पड़ना चाहिए कि संसदीय मार्ग से समाजवाद में संक्रमण किया जा सकता है। उसे अपना ध्यान सदैव जन-संघर्षों पर केन्द्रित रखना चाहिए।

लेनिन ने कहा था —

"क्रांतिकारी सर्वहारा पार्टी को पूंजीवादी संसद-व्यवस्था में इसलिए हिस्सा लेना चाहिए ताकि जनता को जगाया जा सके और यह काम चुनाव के दौरान तथा संसद में अलग-अलग पार्टियों के बीच के संघर्ष के दौरान किया जा सकता है। लेकिन वर्ग संघर्ष को इतना ऊंचा और निर्णयात्मक रूप देने का मतलब है कि संघर्ष के बाकी सब रूप उसके अधीन हो जाएं, वास्तव में पूंजीपति वर्ग के पक्ष में चले जाना और सर्वहारा के खिलाफ हो जाना है। ("संविधान सभा के चुनाव और सर्वहारा अधिनायकत्व", पृष्ठ 36)

उन्होंने दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों की इस बात के लिए भर्त्सना की थी कि वे संसद-व्यवस्था के चक्कर में पड़े हुये हैं और राजसत्ता हथियाने के क्रांतिकारी कार्य को तिलांजलि दे चुके हैं। उन्होंने सर्वहारा पार्टी को एक चुनाव लड़ने वाली पार्टी में, एक संसदीय पार्टी में, पूंजीपति वर्ग की, पिछलग्गू पार्टी में और पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व की रक्षा करने वाले साधन के रूप में बदल दिया। संसदीय मार्ग की पैरवी करके ख्रुश्चेव और उनके अनुयायियों का भी महज वही हश्र होगा जो दूसरी इन्टरनेशनल के संशोधनवादियों का हुआ था।

●

संशोधनवाद, या दक्षिणपंथी अवसरवाद, एक पूंजीवादी विचारधारात्मक रुझान है जो कठमुल्लावाद से भी ज्यादा खतरनाक है। संशोधनवादी, दक्षिणपंथी अवसरवादी, मार्क्सवाद के प्रति महज जबानी जमाखर्च करते है, वे भी ''कठमुल्लावाद'' पर प्रहार करते हैं। लेकिन जिस चीज पर वे वस्तुतः प्रहार करते है, वह मार्क्सवाद की मूलवस्तु है। वे भौतिकवाद और द्वंद्ववाद का विरोध करते है या उन्हें तोड़-मरोड़कर पेश करते है, जनता के जनवादी अधिनायकत्व और कम्युनिस्ट पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका का विरोध करते है या उन्हें कमजोर बनाने की कोशिश करते है, तथा समाजवादी रूपान्तर और समाजवादी निर्माण का विरोध करते है या उन्हें कमजोर बनाने की कोशिश करते है। हमारे देश में समाजवादी क्रान्ति की बुनियादी तौर पर विजय हो जाने के बाद, अब भी कुछ लोग ऐसे है जो पूंजीवादी व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने के सपने देखा करते है तथा हर मोर्चे पर, जिसमें विचारधारात्मक मोर्चा भी शामिल है, मज़दूर वर्ग के खिलाफ संघर्ष करते है। और इस संघर्ष में, संशोधनवादी लोग उनके दाहिने हाथ साबित होते है।

— माओ त्से-तुङ

मजदूरों में एक अति लोकप्रिय रचना

मकड़ा और मक्खी

लेखक - विल्हेल्म लीब्कनेख़्त

विल्हेल्म लीब्कनेख़्त (1826-1900) जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक दल के संस्थापकों में से एक थे। वह जर्मनी के मजदूर वर्ग के ऐसे नेता थे जिनका सारा जीवन मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष और समाजवाद के लिए समर्पित था। 'मकड़ा और मक्खी' लेख उनके एक पैम्फलेट का अंग्रेजी से हिन्दी में भावानुवाद है।

●

आप सभी उस तोंदियल, रोयेंदार, चिपचिपे शरीर वाले कीड़े से परिचित हैं जो यथा-सम्भव दिन के उजाले से दूर अपने उस घातक जाले को बुना करता है जिसमें कि कोई भूख से व्याकुल अदूरदर्शी, असावधान मक्खी फंस जाती है और समाप्त हो जाती है। यह भद्दा जानवर जिसकी आंखें गोल और चमकीली हैं तथा जिसके लम्बे-पतले पैर सामने की ओर मुड़े होते हैं, जिससे शिकार पकड़ने और घोंट कर मारने में उसे काफी आसानी होती है। यह दुष्ट, भद्दा जानवर ही मकड़ा है।

वह मौन, निश्चल अपनी मांद में पड़ा रहकर, अपने शिकार के जाल में फंसने की प्रतीक्षा करता है या फिर निर्बल मक्खी को फंसाने और बेरहमी के साथ जकड़ने के लिए घातक जाले के धागों को बुनता रहता है। यह घृणित जीव अपने जाले में किसी तरह की कमी न रहने देने के लिए अपना अधिकाधिक समय व्यय करता है। अपनी कला और परिश्रम का उपयोग वह जाले को बुनने में करता है ताकि शिकार किसी भी हालत में उसके बन्धन से मुक्त न होने पाये। पहले यह एक तार फेंकता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर अधिक से अधिक। यह आड़े तिरछे तारों को खींचता है, हर एक तार को दूसरे तार से फंसाता है ताकि मृत्यु की यंत्रणा में पड़े हुए शिकार की छटपटाहट से जाला टूट न जाये, क्षतिग्रस्त न हो।

आखिर जाला तैयार हो जाता है, जाल बिछ जाता है, बच निकलने की कोई राह नहीं है। मकड़ा अपनी मांद में चला जाता है और किसी सीधी-सादी मक्खी का इन्तजार करता है जो भूख से व्याकुल होकर भोजन की तलाश में जाले के पास पहुंचती है।

अधिक इंतजार नहीं करना पड़ता, मक्खी जल्दी ही आ जाती है। अपनी खोज में इधर-उधर भटकते हुए बेचारी अचानक सामने फैले हुए तारों से टकराती है, उनमें बुरी तरह उलझ जाती है, वह जकड़न से छूटना चाहती है, पर हार जाती है।

जैसे ही मकड़ा अपने शिकार को फंसा हुआ देखता है, वैसे ही वह अपनी मांद से निकल आता है और रक्त पिपासु आकृति में अपने मुड़े हुए पंजों के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। जल्दी करने की आवश्यकता नहीं। वह भयानक जीव अच्छी तरह जानता है कि एक बार फंस जाने के बाद अभागा कीड़ा बचकर नहीं जा सकता। वह समीप आता है, अपनी उभरी हुई भावशून्य आंखों से अपने शिकार को घूरता है और उसका लेखा-जोखा लेता है। उसका शिकार भयभीत हो जाता है, अपने ऊपर मंडराते संकट को देखकर मक्खी कांपने लगती है। जकड़े हुए धागों से अपने को मुक्त करने के लिए वह प्रयास करती है। छुटकारा पाने की चाह में उसकी सारी शक्ति बेकार कोशिशों में खत्म हो जाती है।

अपने प्रयासों में विफल, निराश मक्खी को जाला और अधिक कस कर दबोचता है। मकड़ा और करीब खिसक आता है। मकड़े के जाले से छुटकारा पाने की हर कोशिश में मक्खी और अधिक मजबूत, महीन धागों में उलझ जाती है, नये तारों में फंस जाती है। अन्त में विरोध करने की सारी शक्ति खोकर थकान से चूर, हांफती हुई वह अपने शत्रु, विजेता, डरावने मकड़े के चंगुल में फंसी उससे दया की आशा करती है।

तब यह भयानक जीव अपने रोयेंदार पैरों को फैलाता है और मक्खी को अपने जानलेवा चंगुल में कस लेता है। इसके बाद वह अपने कमजोर शिकार के भय से कांपते हुए शरीर को काटता है, चूसता है और निचोड़ता है। एक बार, दो बार, तीन बार। वह तब तक घाव करता है जब तक उसकी खूनी प्यास बुझ नहीं जाती। तब वह मक्खी को रख छोड़ता है जो बिल्कुल मर नहीं गयी है। वह लौटकर आता है और फिर खून चूसता है इस प्रकार वह तब तक आता-जाता रहता है जब तक कि वह मक्खी का सारा रक्त तथा पौष्टिक रस चूस नहीं लेता और उस अभागी मक्खी को पूरी तरह से खोखला नहीं कर देता। कभी-कभी बेचारी मक्खी की मौत आने में काफी लम्बा समय लग जाता है।

लेकिन जब तक मक्खी के शरीर, उसकी मुर्दा सी देह में कुछ भी रक्त रहता है जिसे चूसा जा सके, तब तक उसे यह पिशाच अपनी आंख से ओझल नहीं होने देता। यह अपने शिकार का प्राण लेता है, अपनी शक्ति बढ़ाता है, इसका रक्त पीता है और इसे फेंक देता है जब इसमें कुछ भी शेष नहीं रह जाता। तब बेचारी मक्खी, मरी हुई, चूसी हुई, सूखी, तिनके से भी हल्की जाले से बाहर फेंक दी जाती है। हवा का पहला झोंका आता है और उसे बहुत दूर उड़ा ले जाता है और इस तरह सब कुछ समाप्त हो जाता है।

मकड़ा मांद में संतुष्ट होकर लौट आता है। वह अपने से और जग से बहुत खुश है। उसे प्रसन्नता इस बात की है कि दुनिया में अब भी शरीफ लोगों का गुजारा हो सकता है।

शहरों और गांवों के मजदूरो और मेहनतकशो! तुम्हीं मक्खी हो जिसे चूसा और कुचला जाता है। तुम्हें ही निगला जाता है और तुम्हारे खून पर ही अन्य लोग जीवित हैं। ऐ गुलाम लोगो! उत्पीड़ित जनगणों और औद्योगिक मजदूरो! बुद्धिमान श्रमिकों और बुद्धिजीवियो! कांपती हुई युवा कुमारियो और अपने अधिकारों के लिए लड़ने में हिचकिचाने वाली कमजोर पद-दलित पीड़ित नारियो! सैनिको और जंगखोरों के भाग्यहीन शिकारो! तुम सब लोग जो गरीब और दुखी हो, तुम सबको तब उठाकर फेंक दिया जाता है जब तुममें चूसने के लिए कुछ नहीं रह जाता। तुम जो सब कुछ पैदा करते हो, तुम जो देश के दिल, दिमाग और जीवन-शक्ति हो, और तुम सब जिन्हें अपने मालिक का आज्ञाकारी बनकर किसी कोने में चुपचाप एक दुखद मौत मरने के सिवा और कोई अधिकार नहीं प्राप्त है। जबकि तुम्हारा खून-पसीना और मेहनत, चिन्तन और जीवन का इस्तेमाल ही इन्हें धनवान और शक्तिशाली बनाता है, ये हैं तुम्हारे मालिक-उत्पीड़क और बेरहम, घिनौने मकड़े।

मकड़ा है मालिक, पूंजीपति, शोषक, सट्टेबाज, धनवान, भ्रष्टाचारी, धर्मगुरू, महन्त - हर तरह के परजीवी, हरामखोर, निरंकुश जिनके दबाव में हम तड़पते हैं, कष्ट झेलते हैं, जनविरोधी कानून बनाने वाले जो हमें परेशान करते हैं, दुष्ट अत्याचारी जो हमें गुलाम बनाते हैं। वे सभी मकड़े हैं जो दूसरों के ऊपर जीवित रहते हैं, जो हमें पैरों से रौंदते हैं, जो हमारी तकलीफों की खिल्ली उड़ाते हैं और हमारे बेकार होते प्रयासों को देखकर मुस्कुराते हैं।

मक्खी गरीब मजदूर और मेहनतकश है जिसे मालिक द्वारा बनाये गये बेरहम कानूनों के आगे झुकना पड़ता है, क्यों कि बेचारा मजदूर साधनहीन होता है और उसे अपने परिवार के लिए रोटी की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। बड़े उद्योगों का मालिक मकड़ा है, जो हर मजदूर से प्रतिदिन 6 से 8 मार्क तक मुनाफा कमाता है और मजदूर को 12 से 14 घंटे प्रतिदिन काम के एवज में 2 या 3 मार्क पेट पालने के लिए देता है।

मक्खी खान में काम करने वाला मजदूर है, जो अपना जीवन खान के दम घोंटने वाले वातावरण में काम करके मिटा देता है। जो धरती के गर्भ से खनिज निकालता तो है पर उसे अपने उपयोग में नहीं ला सकता।

मकड़ा श्रीमान शेयर-होल्डर है जो अपने शेयर की कीमत दुगुनी-तिगुनी होते देखते हैं पर कभी जो मजदूरों से उनकी मेहनत का फल छीनते हैं और जब भी मेहनत करने वाले जरा भी मजदूरी बढ़ाने की मांग करते हैं तो वे विद्रोहियों को गोली से उड़ा देने के लिए सेना बुला लेते हैं।

वह बालक मक्खी है जिसे छोटी आयु में ही कारखाने, वर्कशाप तथा घरों में जीवित रहने के लिए कठोर परिश्रम और गुलामी करनी पड़ती है। गरीब मां-बाप मकड़े नहीं हैं जो परिस्थितियोंवश अपने बच्चों की बलि देने हेतु लाचार होते हैं, मकड़ा है आज के समाज की बुरी दशा जो उन्हें अपनी स्वाभाविक भावनाओं को भूल जाने और अपने परिवार को खुद ही नष्ट कर देने के लिए मजबूर कर देती है।

मक्खी जनता की वह सुशील कन्या है जो ईमानदारी से अपनी जीविका कमाना चाहती है, लेकिन उसे तब तक काम नहीं मिलता जब तक वह अपने मालिक या फैक्ट्री मैनेजर की कुत्सित इच्छाओं के आगे अपने को समर्पित नहीं कर देती जो उसका उपभोग करता है और तब कलंक से बचने के लिए जो कभी-कभी बच्चे के बोझ के साथ होता है उसे हृदयहीनता तथा निर्ममता के साथ नौकरी से निकाल बाहर करता है।

मकड़ा बड़े घर का घमण्डी छैला है, निठल्ला और आवारा - जो अनेक भोली-भाली नवयुवतियों को फुसलाता है और अपनी तड़क-भड़क से फंसाता है, बेइज्जत करता है और कीचड़ में घसीटता है। जो अधिक से अधिक औरतों की इज्जत बर्बाद करना ही अपना सम्मान समझता है।

कठिन परिश्रम कर खेत जोतने वालो! तुम मक्खी हो। तुम धनी भूस्वामियों के लिए जमीन जोतते हो, अनाज बोते हो, पर काट नहीं सकते, फल उगाते हो पर स्वाद नहीं चख सकते। मकड़े देश के वे महानुभाव हैं जो गरीब किसानों, मेहनतकशों, दैनिक मजदूरों को बिना एक क्षण आराम लिए बिना काम करने को विवश करते हैं, ताकि वे अपना जीवन विलासिता और शान-शौकत के साथ बिता सकें। जबकि वे लगान की दर प्रत्येक वर्ष बढ़ाते जाते हैं और ईमानदारी के साथ किये गये परिश्रम की कीमत बलपूर्वक घटाते जाते हैं।

हम सब गरीब और सीधे-सादे लोग मक्खी हैं, जो युगों से बलि की वेदी की सीढ़ियों पर कांपते रहे हैं, हम पुरोहितों के अभिशाप से भयभीत रहे हैं, हम जो आपस में झगड़ते आये हैं, एक-दूसरे को दबाते आये हैं हम जो जालिमों को अन्याय द्वारा प्राप्त फल का आनन्द लेने देते रहे हैं, क्योंकि हम लोगों की बुद्धि धार्मिक उपदेशों के प्रभाव से विवेकहीन हो चुकी है। मकड़े हैं लबादे पहने धूर्त और लोलुप आंखों वाले धर्मगुरू, जो विश्वास करने वाले लोगों के भोले दिमागों में गर्त की ओर ले जाने वाली शिक्षाएं भरते हैं, उनमें आज्ञाकारी तथा सेवक बनें रहने की भावना का पोषण करते हैं, जो आत्मा को विषैला बनाते हैं और सारे देश को बर्बाद कर देते हैं। जैसाकि पोलैण्ड में हुआ।

थोड़े में वे सारे लोग मक्खी बताये गये हैं जो दलित हैं, शोषित हैं, सताये हुए हैं जबकि मकड़ा नीच, सट्टेबाज, निरंकुश तानाशाह या जिसे हम किसी भी नाम से पुकारें, हर घृणा करने योग्य वस्तु की तरफ इशारा है।

कभी यह मकड़ा बड़े-बड़े भवनों, सामन्ती राजमहलों और जागीरों में अपना जाला बुनता था। अब यह बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों तथा वर्तमान समय के धनी इलाकों को अपने लिए चुनना पसन्द करता है। मुख्यतः आप इन्हें बड़े शहरों में पाते हैं, परन्तु वह छोटे शहरों और गांवों में भी निवास करता है। वह प्रत्येक उस स्थान पर रहता है जहां शोषण पनपता है, जहां मेहनतकश, निर्धन सर्वहारा, छोटा कामगार, दैनिक मजदूर, छोटा किसान, उधार के बोझ से दबे इन थैलीशाहों के असीम लोभ और निष्ठुरता के शिकार रहते हैं।

जहां कहीं भी हो - शहर या गांव में प्रत्येक स्थान पर हम इन बेचारे कीड़ों को अपने शत्रुओं के जाल में फंसा पाते हैं, निकलने की बेकार कोशिशों में लगे हुए! हम देखते हैं कि किस प्रकार वे खोखले होते हैं, मंद पड़ते हैं और मर जाते हैं।

सदियों से निर्बल भयभीत मक्खी और रक्तलोलुप बेरहम मकड़े के झगड़ों में कितनी दुखद घटनाएं घट चुकी हैं।

यह दुख, पीड़ा तथा क्लेश का रक्त रंजित इतिहास है। इसे फिर क्यों दोहराया जाये? जो बीत गया, वह मर चुका है। हम आज और आने वाले कल की बात करें।

हमें मक्खी और मकड़े के इस संघर्ष को ध्यान पूर्वक देखना चाहिए, इनकी अन्दरूनी बातों को समझना चाहिए। शत्रुओं ने जो जाले हमें दबोचने के लिए बनाये हैं, हमें उनकी चाल समझना चाहिए, उनकी साजिशों से सतर्क रहना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि हम सब एक हों। अलग-थलग हम काफी कमजोर हैं, उस जाले को तोड़ने के लिए जिसने हमें फंसा रख है। हम अपनी बेड़ियों को तोड़ डालें, अपने शत्रुओं को गुप्त स्थानों से खींच लायें और प्रत्येक स्थान पर तर्कबुद्धि का प्रखर प्रकाश फैलायें, ज्ञान का विस्तार करें ताकि भविष्य में यह निकृष्ट जीव अंधकार में अपनी चालें न चल सके।

मक्खियो! यदि तुम चाहो, तुममें इरादा हो तो तुम अजेय हो सकती हो। यह सच है कि मकड़े आज भी शक्तिशाली हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। मक्खियो! यद्यपि तुम दुर्बल और तुच्छ हो, फिर भी तुम संख्या में एक पूरी फौज के बराबर हो। तुम्हीं जीवन हो, तुम्हीं संसार हो - केवल यदि तुम चाहो, यदि तुम एकताबद्ध हो जाओ तो तुम सिर्फ एक झोंके से, अपने पंखों की फड़फड़ाहट से सारे भयानक तारों को तोड़ सकती हो, उन जालों को तहस-नहस कर सकती हो जिनमें तुम कैद हो, जहां तुम हताश होकर लड़ती हो और भूख से मर जाती हो। यदि तुममें इरादा हो तो तुम दरिद्रता और दासता को गुजरे दिनों की बातें बना सकती हो।

इसलिए चाहना सीखो। इरादा करना सीखो। ●

नारी सभा

गोरखपुर का सर्राफ नर्सिंग होम काण्ड

हिंसा, पूंजी और सत्ता के त्रिशूल से बींध दी गयी एक और औरत की आत्मा और शरीर

पिछले कुछ सालों में, खासकर नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से समाज में पूंजी की जकड़ और पूंजी की हवस जिस तरह से बढ़ी है, उसी के साथ अपराधों की भी बाढ़ आ गई है। इन अपराधों का सबसे ज्यादा शिकार समाज के कमजोर, असंगठित तबके, दलित व स्त्रियां हो रही हैं। स्त्रियों में भी गरीब वर्ग की स्त्रियों पर सबसे ज्यादा हमले हो रहे हैं।

पिछले 11 जून को गोरखपुर के सर्राफ नर्सिंग होम में भरती एक महिला के साथ उसी नर्सिंग होम के कम्पांउडर द्वारा बलात्कार की घिनौनी घटना इस समाज में बढ़ रही विकृत, बीमार औरत विरोधी मानसिकता को उजागर करने वाली ऐसी ही एक घटना थी। कोई भी स्त्री-पुरुष - जिसके भीतर इंसानियत बची हुई है - इसे कभी भुला नहीं पायेगा। इसकी कड़वी याद इस बर्बर समाज व्यवस्था के खिलाफ नफरत पैदा करने का काम करती रहेगी।

शहर की एक 'सम्भ्रान्त' महिला द्वारा चलाये जाने वाले सर्राफ नर्सिंग होम में एक ग्रामीण महिला तुलसी के 'पेट के ट्यूमर' का आपरेशन हुआ था। पेट में 17 टांके लगे थे जो 13 जून को कटने थे। लेकिन 11 जून की रात को अस्पताल के कम्पांउडर आशीष चटर्जी ने पट्टी बदलने के बहाने उसे ड्रेसिंग रूम में ले जाकर उसके साथ बलात्कार किया। साथ में आया तुलसी का ससुर त्रिलोकीनाथ बाहर से दरवाजा पीटता रहा, शोर मचाता रहा लेकिन कोई उसकी मदद को नहीं आया। अस्पताल के कर्मचारियों ने नीच कम्पांउडर आशीष चटर्जी को तो चुपचाप वहां से भगा दिया लेकिन तुलसी के ससुर का मुंह बंद करने की कोशिश की।

अस्पताल की मालकिन उमा सर्राफ और नर्सिंग होम से जुड़े शहर के एक अन्य मानिन्द डाक्टर आर.ए. अग्रवाल रात में ही वहां पहुंच गये लेकिन दोनों ने वहां ड्यूटी पर मौजूद डाक्टर दिनेश श्रीवास्तव के साथ मिलकर मामले को रफा-दफा करने की पूरी कोशिश की और चार घंटे तक त्रिलोकी को बाहर जाने से रोके रखा। चार घंटे बाद किसी तरह त्रिलोकी अस्पताल से बाहर निकला और पुलिस को खबर दी।

अगले दिन जब यह घटना अखबारों में छपी तो शहर के कई संगठनों ने इसे मुद्दा बनाया। कई संगठन इस मुद्दे के बहाने अपनी राजनीति चमकाने की कोशिश में लग गये। पर समाज के जिन लोगों तक इस आन्दोलन की आंच पहुंच रही थी, उनके हाथ बहुत लम्बे थे, उनकी थैलियों का मुंह बहुत बड़ा था। ज्यादातर संगठन जल्दी ही चुप्पी साध गये। यहां तक कि इस बर्बर घटना की शिकार तुलसी देवी के चरित्र पर कीचड़ उछालकर उसके साथ जघन्य बलात्कार को जायज ठहराने की गंदी कोशिश भी कुछ तथाकथित सम्भ्रान्त कहे जाने वाले लोगों और "निष्पक्ष" पत्रकारिता की मिसाल कायम करने वाले 'कलम के सिपाहियों" ने की।

इस दौरान तुलसी और उसके घरवालों ने बड़े साहस का परिचय दिया वरना सफेदपोशों ने इसे दबा डालने में कोई कोर-कसर नही छोड़ी थी।

ऐसे समय में "नारी सभा" नामक संगठन और छात्रों के क्रान्तिकारी संगठन "दिशा छात्र समुदाय" ने इस मामले को सीधे जनता की अदालत में ले जाने का फैसला किया। जिलाधिकारी कार्यालय पर प्रदर्शन के बाद शहर के अलग-अलग चौराहों पर सभाओं और पर्चा वितरण के जरिये नागरिकों को आंदोलन के लिए सड़कों पर उतरने का आह्वान किया गया। जनता के दबाव को देखते हुए प्रशासन ने आखिरकार अपराधियों के विरुद्ध चार्जशीट दाखिल कर दी है और मामला अदालत में जा चुका है। लेकिन तुलसी और उसके परिजनों के शरीर और आत्मा पर हुए जख्मों का निशान क्या कभी मिट सकेगा?

अदालत में मामला चले जाने से क्या तुलसी को न्याय मिल जाएगा? भंवरी देवी से लेकर इस देश में रोज ही होने वाली बलात्कार की वीभत्स घटनाओं की शिकार स्त्रियों को क्या न्याय मिल पाता है? ज्यादातर अदालतों में बलात्कार की शिकार स्त्री की इज्जत और गरिमा के चीथड़े उड़ाने के सिवा क्या कुछ होता है? पिछले कुछ समय में गरीब स्त्रियों पर हर जगह भंयकर, बर्बर हमलों की घटनाएं तेजी के साथ बढ़ी हैं। दौना, पड़रिया, गोरखपुर, हरिद्वार, मथुरा जैसी न जाने कितनी जगहों पर औरत की आत्मा और शरीर को हिंसा, पूंजी और सत्ता के त्रिशूल से बींधा जा रहा है। क्या इनमें से एक भी अपराधी को सजा हुई है? आई.ए.एस. अधिकारी रूपन देवल बजाज के साथ छेड़खानी करने वाले पुलिस चीफ के.पी.एस. गिल को सजा सुनाई जा सकती है क्योंकि वह आखिर शासक वर्गों की ही एक सदस्य का मामला था। लेकिन गरीब, मेहनतकश औरतों को निर्वस्त्र करने वाले, बलात्कार करने वाले सैकड़ों मानव पशु छुट्टा घूम रहे हैं।

अब सवाल आये दिन घटने वाली इक्का-दुक्का घटनाओं का नहीं है। पानी सिर से ऊपर जा रहा है। अब तो अस्पताल-स्कूल-कालेज और गांव-मोहल्ले के भीतर भी स्त्रियां सुरक्षित नहीं। यह हमारा समाज है जहां बीमार दिलो-दिमाग वाले अपराधियों-बलात्कारियों की जमात लगातार नये सामाजिक ढांचे और बाजार संस्कृति के प्रभाव में बढ़ती जा रही है। ऐसे में, हम समझते हैं कि यही उठ खड़े होने का समय है। यही लड़ने का समय है।

हमें संगठित प्रतिरोध करना होगा। नारी विरोधी अपराधों के खिलाफ माहौल तैयार करना होगा। यही नहीं, लड़कियों को अब आत्मरक्षा दस्ते बनाने होंगे और शोहदों-लफंगों को खुद सबक सिखाना होगा। घरों में दुबकने से काम नहीं चलेगा। यदि आप स्कूल-कालेज, दफ्तर-बाजार-अस्पताल या कहीं काम पर जाने वाली अपनी बेटियों-बहनों की, अपने परिवार की स्त्रियों की हिफाजत चाहते हैं तो उन्हें खुद अपनी हिफाजत करना सिखाइये, लड़ना सिखाइये और खुद भी उनके लिए लड़ना सीखिए। यही और सिर्फ यही एक उपाय है।

• कात्यायनी

आत्महत्या नहीं छंटनी के कुल्हाड़े से नई आर्थिक नीति की बलिवेदी पर मजदूरों की हत्या

(पेज एक से आगे)

प्रसंगवश यहां यह भी बता देना जरूरी है कि जिस पश्चिम बंगाल में पिछले दो दशकों से ज्योति बसु की वामपंथी सरकार "समाजवाद" ला रही है, वहां आत्महत्याओं की संख्या देश में सबसे ज्यादा है। मध्यवर्ग के एक छोटे से शहरी हिस्से को सुधारों का लॉलीपॉप चटाने वाले और एक हद तक पूंजीवादी भूमि सुधार करने वाले ज्योतिबसु के "बाजार समाजवाद" से भारत के पूंजीपति और बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी खुश हैं और आई०एम०एफ० तथा विश्व बैंक ने भी संतोष प्रकट किया है। निजीकरण, विदेशी पूंजी को न्यौतने और कारखानों के आधुनिकीकरण के नाम पर मज़दूरों की बड़े पैमाने पर छंटनी में ज्योति बसु की सरकार किसी से पीछे नहीं रही है। कलकत्ता के आधे से अधिक पुराने कारखानों के बंद या बीमार होने, लाखों मज़दूरों के बेकार होने तथा विक्टोरिया, कानोड़िया और टीटागढ़ जूट मिल के बेकार मजदूरों के लम्बे संघर्षों और दमन से भला कौन परिचित नहीं है? बंगाल में और देश छंटनी कर दी थी तो पांडिचेरी के जवाहरलाल इंस्टीट्यूट आफ पोस्टग्रेजुएट मेडिकल रिसर्च ने एक सर्वेक्षण में पाया कि इनमें आधे से ज्यादा लोगों में आत्महत्या की प्रवृत्ति पैदा हो गई। इस अध्ययन के संयोजक और संस्थान में मनोरोग विज्ञान के सहायक प्रोफेसर डा०के०ई० सदानंदन उन्नी कहते हैं, "मानो वे मजदूर किसी अंधी गली में घुस गये और अपनी दुर्दशा से उबरने का उनके पास कोई चारा नहीं रह गया था।"

प्रसंगवश यहां यह भी बता देना जरूरी है कि जिस पश्चिम बंगाल में पिछले दो दशकों से ज्योति बसु की वामपंथी सरकार "समाजवाद" ला रही है, वहां आत्महत्याओं की संख्या देश में सबसे ज्यादा है। मध्यवर्ग के एक छोटे से शहरी हिस्से को सुधारों का लॉलीपॉप चटाने वाले और एक हद तक पूंजीवादी भूमि सुधार करने वाले ज्योति बसु के "बाजार समाजवाद" से भारत के पूंजीपति और बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी खुश हैं और आई०एम०एफ० तथा विश्व बैंक ने भी संतोष प्रकट किया है। निजीकरण, विदेशी पूंजी को न्यौतने और कारखानों के आधुनिकीकरण के नाम पर मज़दूरों की बड़े पैमाने पर छंटनी में ज्योति बसु की सरकार किसी से पीछे नहीं रही है। कलकत्ता के आधे से अधिक पुराने कारखानों के बंद या बीमार होने, लाखों मज़दूरों के बेकार होने तथा विक्टोरिया, कानोड़िया और टीटागढ़ जूट मिल के बेकार मजदूरों के लम्बे संघर्षों और दमन से भला कौन परिचित नहीं है?

बंगाल में और देश के अन्य हिस्सों में, छंटनीशुदा मजदूरों के अतिरिक्त आत्महत्या करने वालों का सबसे बड़ा हिस्सा (60 फीसदी) 30 वर्ष से कम उम्र के नौजवानों का है जो बेरोजगारी की मार सबसे अधिक झेल रहे हैं।

यहां यह बता देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि मेक्सिको, अर्जेण्टीना, ब्राजील आदि जिन देशों में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां पहले से ही लागू होती रही हैं, वहां सामाजिक अपराध, वेश्यावृत्ति आदि के साथ ही आत्महत्या और पागलपन आज एक गंभीर समस्या बने हुए हैं। रूस और पूर्वी यूरोप की जो जनता खुश्चेव काल में समाजवाद की पराजय के बाद से ही नकली कम्युनिस्टों की तानाशाही सत्ता का कहर भोग रही थी, उसे पश्चिमी पूंजीवाद ने जनतंत्र के नाम पर स्वर्ग के सपने दिखाये। आज उस स्वर्ग की असलियत जगजाहिर है। रूस में आत्महत्या की दर आज प्रति एक लाख पर 65 है जो कि भारतीय दर से सात गुना अधिक और पूरी दुनिया में सबसे अधिक है।

इतिहास के इस दौर में मानवद्रोही पूंजीवाद आम जनता को बस मानसिक बीमारी, अपराध और मौत का तोहफा ही दे सकता है। यह स्वयंसिद्ध है कि पूंजीवाद की मौत ही अब स्वस्थ जीवन की शर्त है। इतिहास का यह हुक्म है जिसकी तामील सर्वहारा वर्ग को करनी है। यही भविष्य है जो आज कठिन वर्तमान के अंधेरे गर्भ में पल रहा है और दुनिया के अलग-अलग कोनों से मज़दूर संघर्षों की जो खबरें आ रही हैं, वे गर्भस्थ शिशु के जीवन के संकेत हैं।

कहां गई है लड़कियां

(उन्नीसवी सदी के शुरूआती दौर का ब्रिटेन का एक लोकगीत)

कहां गयी है लड़कियां?
क्या बताऊं भाई,
भाप मशीन चलाकर
कर रही है बुनाई।
देखना हो उनको अगर
अलस्सुबह उठना होगा
पौ फटते ही
फैक्टरी तक पैदल चलना होगा।

एक जापानी कविता

सोई हुई औरतें आगे बढ़ेंगी

दिन आ रहे है पर्वत हटाने के
ऐसा कहती हूं, तो शक होता है
दूसरों को
अर्से से पर्वत तो सिर्फ सो ही रहे है
लगातार।
आग से गुजरती हुई आगे बढ़ी थीं
औरतें अतीत में
फिर भी तुम्हे शायद विश्वास न हो
सोई हुई सभी औरतें जागेंगी और
अब आगे बढ़ेंगी।

• ओसानो आकिको

इंसाफ के लिए केरल की औरतों की चूल्हा-चौका हड़ताल

केरल के कन्नूर जिले के पूर्वी एलेरी गांव की स्त्रियों ने 11 अगस्त को एक अनोखी "चूल्हा-चौका हड़ताल" कर दी। गांव में बलात्कार की शिकार एक स्त्री को इंसाफ दिलाने के लिए चल रहे लम्बे संघर्ष के समर्थन में स्त्रियों ने इस हड़ताल का आयोजन किया।

तीन साल पहले गांव की एक युवती के साथ उसके पति के सामने कुछ गुण्डों ने बलात्कार किया था। लम्बे संघर्ष के बावजूद उन्हें आज तक सजा नहीं दिलाई जा सकी। कुछ समय पहले गांव की स्त्रियों ने एक बहादुरी भरा कदम उठाते हुए 'नारी इंसाफ मंच' नाम संगठन की मदद से इस मुद्दे को अपने हाथ में ले लिया और तीखा संघर्ष छेड़ दिया।

मंच ने सारी राजनीतिक पार्टियों को पत्र लिखे लेकिन किसी ने जवाब तक नहीं दिया। फिर नारी इंसाफ मंच ने पूरे इलाके में एक दिन की 'चूल्हा-चौका हड़ताल' का नारा दिया जो बेहद सफल रही। इसके बाद से औरतों की लड़ाई में उनके पति भी शामिल हो गये हैं। बहुत से मर्दों ने स्त्रियों के संघर्ष में साथ देने के लिए समिति भी गठित कर ली है।

नारी इंसाफ मंच की संयोजिका बदरुन्निसा का कहना है अपराधियों को बचाने वाली पुलिस और अफसरों को इस हड़ताल से इतना समझ में आ गया होगा कि सदियों से दबाई-कुचली गई औरतें भी प्रतिरोध करने का हक और हिम्मत रखती हैं।

साझा सरकार की काली टोपी में टंके दो लाल फुंदने

(पेज 1 से आगे)

और देङ जैसे इनके पुरखों के विरुद्ध मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन और माओ ने निर्मम वैचारिक संघर्ष चलाकर इन्हें शिकस्त दी और क्रान्ति को आगे बढ़ाया।

सी.पी.आई. और सी.पी.एम. घोषित तौर पर खुश्चेव और देङ के अनुयायी है न कि मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और माओ के। सी.पी.आई. तो 1952 से सर्वहारा हितों के साथ गद्दारी करने के बाद कांग्रेस और रूसी संशोधनवादियों के टुकड़ों पर पलते-पलते पूंजीपतियों का दुमछल्ला बन गयी है, इसीलिए पूंजीवादी राज्यसत्ता में गृहमंत्री का पद लेने में इसे जरा भी शर्म न आयी। पूंजीवादी शासन व्यवस्था में गृह मंत्रालय का बुनियादी रूप से एक ही काम होता है। देश में कानून-व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर पूंजीपति वर्ग की तानाशाही की हिफाजत करना। पुलिस-फौज से मजदूरों-किसानों के संघर्षों और जनान्दोलनों का दमन करवाना। देश की एकता के नाम पर विभिन्न इलाकों की जनता को फौजी बूटों के नीचे कुचलवाना। दमन के इस काम को अंजाम देंगे कामरेड (!!) इन्द्रजीत गुप्ता।

सी.पी.एम. जो ज्यादा शातिर है, जिसकी तात्कालिक चिन्ता पं. बंगाल, केरल और त्रिपुरा में अपनी सूबेदारी कायम रखने की है, देवगौड़ा के अनिश्चित भविष्य वाली साझा सरकार में शामिल होने की जगह उसकी संचालन समिति में घुसने में ज्यादा हित देखती है। वैसे विदेशी पूंजी को आमंत्रित करने में ज्योतिबसु किसी से पीछे नहीं हैं। हल्दिया प्रोजेक्ट में साम्राज्यवादियो से उनकी सांठ-गांठ किसी से छुपी नहीं है। पं. बंगाल की जूट मिलों के मजदूरों का निर्मम दमन उनके सर्वहारा प्रेम की कलई खोलने के लिए काफी है।

इन सबकी कार्य पद्धति हमेशा से एक जैसी रही है कि 'टैक्टिस' के नाम पर क्रान्ति के लाल रंग में संसदवाद की कालिख धीरे-धीरे मिलाना शुरू करके अन्त में पूंजीवादी राजनीति के नाबदान के कीड़े बन जाते हैं और फिर उसी नाबदान में इनको आनन्द मिलने लगता है। इनका चरित्र तो जनता के सामने एकदम नंगा हो चुका है और समाजवाद व क्रान्ति की बातें भी अब ये नहीं करते। इनका चरित्र तो साफ ही हो चुका है पर इनकी कतार में नये-नये शामिल मुल्लों के चरित्र को ठीक-ठीक समझने के लिए मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं को एक बार याद दिलाना जरूरी है। इस खेल के नये मदारी श्री विनोद मिश्र हैं जो तेजी से अपने वैचारिक पूर्वजों की राह पर चलते हुए पूंजीवादी नाबदान में घुसने की फिराक में हैं। ये लेनिन के शब्दों में, "संसदीय सुअरबाड़े" में उसका भंडाफोड़ करने की नीयत से नहीं बल्कि पूंजीपतियों की चाकरी और खुद के लिए कुछ टुकड़े हासिल करने की नीयत से प्रवेश कर रहे हैं। आज तक का इनका व्यवहार यही बताता है कि इनकी रगों में काउत्सकी, खुश्चेव और देङ का रक्त बह रहा है। इनकी वंशावली की ठीक से पड़ताल करने की जरूरत है।

इस व्यवस्था में बीच-बीच में मजदूरों को जो थोड़ी बहुत राहत या छूट मिलती भी है, वह इन संसदीय वामपंथियों की चीख पुकार से नहीं बल्कि व्यवस्था की अपनी मजबूरियों के कारण मिलती है ताकि क्रान्ति को आगे खिसकाया जाये। बूढ़ी, जर्जर पूंजीवादी व्यवस्था अब यह भी राहत देने से रही, सो ये बूढ़े तोते सिर्फ टांय-टांय करके फिस्स हो जायेंगे।

मार्क्सवाद की यह स्पष्ट धारणा रही है कि हिंसा नये समाज को पैदा करने में धाय की भूमिका निभाती है। बलात क्रान्ति द्वारा सत्ता परिवर्तन अब तक के ज्ञात इतिहास का अनिवार्य नियम रहा है। सही मार्क्सवादी वही है जो न सिर्फ वर्ग-संघर्ष को इतिहास के विकास के एक अनिवार्य नियम के रूप में स्वीकार करता हो, बल्कि इसे सर्वहारा के अधिनायकत्व तक और फिर सभी वर्गों के उन्मूलन और वर्गीय शोषण के एक औजार के रूप में स्वयं राज्य के विलोपन को स्वीकार करता हो।

आज, जबकि विश्व सर्वहारा की फौरी हार का फायदा उठाकर पूंजीवादी प्रचारतंत्र एवं उसके भाड़े के टट्टू मार्क्सवादी विचारधारा को तोड़-मरोड़ रहे हैं, ऐसे में प्रत्येक मजदूर का यह दायित्व हो जाता है कि वह मार्क्सवाद का सच्चा ज्ञान हासिल करे तथा प्राणप्रण से इसकी हिफाजत करे। तभी क्रान्ति को अमली जामा पहनाया जा सकेगा।

नये दौर में पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के चरित्र में जो बदलाव आया है उससे हमारी रणनीति और रणकौशल ही बदलेगी न कि वर्ग संघर्ष का बुनियादी सिद्धान्त। मजदूर वर्ग की राजनीतिक चेतना उन्नत करने के लिए तथा संसद का भंडाफोड़ करने के लिए सीमित पैमाने पर इसमें भाग लिया जा सकता है। इस रास्ते बहुमत हासिल करके पूंजीवाद का खात्मा सिर्फ एक दिवास्वप्न है।

संशोधनवाद, ट्रेडयूनियनवाद और अर्थवाद के तरह-तरह के भटकावों के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाते हुए मजदूर वर्ग को क्रान्ति की तैयारी करनी है। अपनी तात्कालिक आर्थिक मांगों के लिए ट्रेड यूनियन के मंच से लड़ते हुए राजनीतिक अधिकारों तक आगे बढ़ते हुए क्रान्ति की मंजिल तक पहुंचना है।

संशोधनवादियों ने जिस तरह लेनिन की शिक्षाओं को ताक पर रखकर पार्टी को चवन्निया मेम्बरी वाली पार्टी में तब्दील कर दिया था, उसका परिणाम यही निकलना था। मजदूर वर्ग को एक सच्ची क्रान्तिकारी विचारधारा के आधार पर गठित क्रान्तिकारी पार्टी के गठन के रास्ते में आने वाली दिक्कतों-बाधाओं को पार करने की हिम्मत करनी पड़ेगी।

साझा सरकार की टोपी से झूल रहे दो लाल फुंदने हमारे लिए यही शिक्षा देते हैं कि सर्वहारा को खुले दुश्मनों की अपेक्षा भितरघातियों ने अधिक नुकसान पहुंचाया है। इन भितरघातियों के प्रति रंचमात्र उदारता घातक होगी।

● **कबीरदास**

साझा सरकार का साझा बजट ... यानी जनता के लिए कपट ही कपट

(पेज एक से आगे)

गया है। आइये देखें कि जोर कहां पर और कितना है।

मनमोहन सिंह के अंतिम बजट में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम पर कुल घरेलू उत्पाद का 0.05% खर्च किया गया था। चिदम्बरम जी द्वारा 16 करोड़ रुपये और खर्च करने पर भी यह प्रतिशत 0.05% ही है। अर्थात कांग्रेसी बजट और साझा बजट में इस मसले पर रत्ती भर फर्क नहीं है। ग्रामीण रोजगार योजना में चिदम्बरम जी एक कदम और आगे बढ़कर पिछले बजट की तुलना में 20% कम खर्च करेंगे। खाद्य सब्सिडी, जिसे मनमोहन सिंह ने विश्वबैंक के दबाव में कुल घरेलू उत्पाद के 0.51% से घटाकर 0.46% कर दिया था, उसमें श्री चिदम्बरम ने 0.01% की मामूली सी वृद्धि करके उसे 0.47% किया है।

ये आंकड़े साफ-साफ बताते हैं कि गरीबों को रोजगार और रोटी मुहैया कराने के बारे में साझा सरकार की दिशा क्या है। गरीबों के स्वास्थ्य के बारे में घड़ियाली आंसू बहाते हुए एक नया शगूफा छोड़ा गया है, गरीबों का स्वास्थ्य बीमा। एक तीर से कई शिकार। बीमा कम्पनियों द्वारा गरीबों के स्वास्थ्य के नाम पर लूटने का पूरा अवसर, किसी ठोस योजना के अभाव में इस नये कार्य से पैदा हुयी अफरा-तफरी का फायदा उठाकर सरकारी बीमा कम्पनियों के निजीकरण की प्रक्रिया को तेज करना और गरीबों के स्वास्थ्य सम्बन्धी जिम्मेदारियों से सरकार को नैतिक और वैधिक तौर पर पूर्ण मुक्ति।

आम आदमी का एक सवाल शिक्षा का भी है। नये बजट में शिक्षा के मद में 20.89% की वृद्धि का खूब ढ़िढोंरा पीटा जा रहा है। सच्चाई यह है कि यदि मुद्रा स्फीति को ध्यान में रखा जाये तो पिछले बजट के बराबर भी खर्च करने के लिए कम से कम 25% की वृद्धि की जानी चाहिए थी। इस तरह शिक्षा पर पिछले बजट की तुलना में कम खर्च होगा।

तो यह है गरीबोन्मुखी बजट का असली गंदा चेहरा जिसे पूंजीवादी भाड़े के कलम घसीट "मानवीय चेहरे" वाला बता रहे हैं। गरीबों और मेहनतकश के नाम पर एक छदाम भी नहीं खर्च होगा। उल्टे उनके खून को कैसे और निचोड़ा जा सके इसकी नयी-नयी तरकीबें ईजाद की जा रही हैं।

खेती के क्षेत्र में भी छोटे और मझोले किसानों के हित की पूरी अनदेखी की गयी है। पहले छोटे ट्रैक्टरों पर 30000 रुपये की सब्सिडी सिर्फ छोटे किसानों को मिलती थी। नये बजट में इस सब्सिडी (छूट) का लाभ बड़े किसानों फार्मरों) को भी दिया जायेगा। सिंचाई की आम सुविधाओं के विकास की कोई चर्चा नहीं है जिससे छोटे किसानों को लाभ पहुंचे, इसकी जगह स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई मशीनों पर सब्सिडी 50% से बढ़ाकर 70% कर दी गयी है। जाहिर है यह लाभ सिर्फ बड़े पूंजीवादी भूस्वामियों के लिए ही है। तेल की कीमतें तो बजट के पहले ही बढ़ा दी गयी थीं, रहा बिजली का सवाल तो नये बजट में बिजली उत्पादन के मद में खर्च काफी कम कर दिया गया है। जाहिर है, चिदम्बरम जी यह मान कर चल रहे हैं कि अब बिजली उत्पादन देशी-विदेशी पूंजीपति करेंगे और मनमाने कीमत पर बिजली बेचेंगे। उर्वरक सब्सिडी पर भी नये बजट में छोटे किसानों को कोई छूट नहीं दी गयी है। पूरी मुकम्मिल योजना है कृषि क्षेत्र के पूंजीवादीकरण और छोटे मझोले किसानों के तबाहीकरण की। इस कार्य को अंजाम देंगे भूतपूर्व लाल बांकुड़े श्री चतुरानन मिश्र, कृषि मंत्री, भारत सरकार। यह है नकली लाल गोटी का कमाल।

अब जरा सार्वजनिक क्षेत्र का जायजा लिया जाये जिसमें कार्यरत मजदूरों और कर्मचारियों के सबसे बड़े नुमाइन्दे सी.पी.एम. और सी.पी.आई हैं। चिदम्बरम के पहले नीतिगत वक्तव्य पर इन्होंने खूब शोर किया था और लगा कि साझा वित्तमंत्री जी डर गये और बजट में इन लाल बांकुड़ों के इलाके को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा। हुआ इसका ठीक उल्टा। सार्वजनिक उद्यमों को प्रोफेशनल ग्रुपों को सौंप दिया जायेगा अर्थात निजी क्षेत्र को सौंप दिया जायेगा। इस क्षेत्र के निजीकरण हेतु प्रस्तावित कमेटी के गठन की बात भी परोक्ष रूप से कर दी गयी है।

बीमा कम्पनियों के निजीकरण को वित्तीय क्षेत्र के सुधार के नाम पर अमली जामा पहनाया गया है। घाटे में चल रहे सरकारी उद्यमों को दोबारा खड़ा करने के लिए एक पैसा भी नहीं दिया गया। स्टील का आयात शुल्क कम करके सरकारी स्टील कम्पनियों का दिवाला पिटवाने का मुकम्मिल इंतजाम कर दिया गया है। विदेशी कम्प्यूटरों और इलेक्ट्रानिक सामानों पर आयात शुल्क कम करके सरकारी उद्यमों का गला अंतिम तौर पर दबा दिया गया है। अब गाज गिरेगी इन उद्यमों में कार्यरत करोड़ों मजदूरों पर -- पहले नीले कालर वालों पर फिर सफेद कालर वालों पर। उनके नेता तो साझा सरकार का साझा गीत गाने में लगे हैं, लड़ेगा कौन?

बजट का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा, कि वास्तव में बजट किसके हित में है, इसे समझने की जरूरत है। इस बात का बड़ा शोर है कि जीरो टैक्स कंपनियों पर 12% की लेवी लगाकर पूंजीपतियों पर अंकुश लगाया गया है। सच यह है कि इस टैक्स का प्रस्ताव तो पूंजीपतियों के संगठनों को पहले से ही मान्य था। हां, इसकी आड़ में पूंजीपति जो बड़े-बड़े फायदे चाहते थे वह उन्हें मिले। कारपोरेट टैक्स सरचार्ज घटा दिया गया। बड़े पूंजीपति घरानों और मल्टीनेशनल कम्पनियों को इससे अकूत फायदा होगा। एक हिसाब के अनुसार सिर्फ हिन्दुस्तान लीवर को एक झटके में 11 करोड़ रुपये का फायदा हुआ। अब, सैकड़ों अन्य कम्पनियों का लाभ भी जोड़ा जाये तो तस्वीर एकदम साफ हो जाती है। आयात शुल्क में भारी कमी करके साम्राज्यवादी लुटेरों के लिए रास्ता साफ कर दिया गया है। भारत में निवेश सम्बन्धी प्राविधानों को और सरल बना कर विदेशी पूंजी के आने का द्वार पूरी तरह खोल दिया है। चिदम्बरम जी ने सीना ठोंककर संसद में कहा कि इस बजट से विदेशी निवेशकों को प्रोत्साहन मिलेगा तथा दस अरब डालर से भी अधिक की पूंजी भारत में आयेगी। कहां गया, संसदीय वामपंथियों का साम्राज्यवाद विरोध?

एक और मजेदार बात, काले धन पर अंकुश लगाने एवं वित्तीय घोटालों के सम्बन्ध में कड़े कानून बनाने की बड़ी चर्चा थी। साझा सरकार के साझा कार्यक्रम की यह रीढ़ की हड्डी थी। भ्रष्टाचार को समाप्त करने की बड़ी-बड़ी बातें थीं। चिदम्बरम जी ने अपने बजट में इन मुद्दों पर एक शब्द भी न कहके साझा सरकार के तथाकथित जनपक्षधर धड़ों के मुंह पर कालिख पोत दी। एक मायने में देखा जाये तो यह ऐसा पहला बजट है जिसमें इन मुद्दों पर कोई चर्चा नहीं है। चिदम्बरम जी ने तो मनमोहन सिंह के भी कान काट लिये। वैसे सारी पूंजीवादी पार्टियां अब इस सच्चाई को छुपाने की भी कोशिश नहीं करती कि भ्रष्टाचार आज के पूंजीवाद का अनिवार्य नियम है।

सच तो यह है कि भारत की ही नहीं पूरे विश्व की पूंजीवादी व्यवस्था आज जिस मुकाम पर है, उसके लिए संभव ही नहीं कि वह आम आदमी के हित में कुछ करेगी सिवाय इसके कि कुछ चबाई हुई हड्डिया उन्हें बांटने और भ्रमित करने के लिए फेंक दे और भ्रम के इस आवरण में उनकी रगों में एक-एक बूंद खून निचोड़ने का काम निर्ममतापूर्वक जारी रखे। संसदीय चुनावबाज वामपंथी पार्टियां आज इस काम में उनका सबसे बड़ा मददगार बनकर उनके इशारे पर जमूरों का करतब दिखा रही है।

ऊपर हमने बजट की जो मोटी-मोटी बातें गिनाई हैं, उस सबकी भी कोई चर्चा नहीं की जाये तो भी केवल एक बात से इस बजट और उसे पेश करने वालों के असली चरित्र को पहचाना जा सकता है। जिस बजट से देशी पूंजीपति भी गदगद हैं, विदेशी लुटेरे भी प्रसन्न हैं, कांग्रेस अपनी ही पीठ ठोंकने में लगी हो, भाजपा भी संतुष्ट हो - उस बजट को समझने के लिए ज्यादा मशक्कत करने की जरूरत नहीं है। जिस हथियार से लुटेरे जनता का गला रेतने जा रहे हों, उसकी तारीफ केवल वही कर सकता है जो लुटेरों का ज़रखरीद हो या फिर मूर्ख।

●

15 अगस्त के मौके पर...

आजादी शान्ति के रास्ते से नहीं क्रान्ति के रास्ते से मिलती है

आजादी के 49वें साल का जश्न ऐसे समय में मनाया जा रहा है जब भारत का मेहनतकश अवाम भयंकर दुर्दिनों का सामना कर रहा है। कारखानों के बंद होने, तालाबंदी, छंटनी के शिकार लाखों मजदूर तिल-तिल कर मरने के लिए मजबूर हैं, मझोले और गरीब किसानों, खेतिहर मजदूरों की भारी आबादी अपनी जगह-जमीन से उजड़ रही है, पेट की मार लाखों बच्चों का बचपन छीनकर उन्हें उजरती मजदूरी के नर्क में धकेल रही है, सड़कों की खाक छानते बेरोजगार नौजवानों का हुजूम रोज बढ़ता जा रहा है, दो रोटी के लिए अस्मत बेचने को बेबस औरतों-बच्चियों की कतार में लाखों की और बढ़ोत्तरी हो गई है। यही है उदारीकरण-निजीकरण के उस बाजार-स्वर्ग की असलियत जिसका सपना पांच बरस पहले दिखाया गया था। यही है आर्थिक नवउपनिवेशवाद के दौर के आजाद भारत की वह गंदी शक्ल जिसे और सजाने-संवारने के काम में देवगौड़ा की सरकार जुटी हुई है।

अपने श्रम की बढ़ती लूट से त्रस्त और छंटनी के शिकार मजदूरों, महंगाई-बेरोजगारी से तबाह आम जनता, शिक्षा और रोजगार के सही अवसरों से वंचित नौजवान तथा पूंजी की मार से पिटे किसान के अन्दर आजादी का यह जश्न केवल नफरत ही पैदा कर सकता है। और जहां तक सरमायेदारों और उनके नेताओं-अफसरों का सवाल है, यह जश्न उनके दिलों में भी खुशी नहीं पैदा कर पा रहा है। पूरी दुनिया की तरह अपने देश में भी पूंजीवाद का संकट गम्भीर होता जा रहा है। सत्ताधारी वर्ग और उनकी प्रतिनिधि पार्टियां जनता की लूट के माल की बंदरबांट के लिए घूरे पर लड़ते कुत्तों की तरह आपस में झगड़ रही हैं।

यह है उस अधूरी, विकलांग आजादी का नक्शा, जो हमें 15 अगस्त 1947 को मिली थी।

आखिर यह आजादी अधूरी क्यों रह गई? इसके कारणों की भी हमें जांच करनी चाहिए। तभी हम मेहनतकश जनता के लिए सच्ची और पूरी आजादी को हासिल करने की राह भी तलाश पायेंगे।

पूंजीवादी लेखकों, इतिहासकारों और स्कूली शिक्षा के जरिये लगातार इस बात का प्रचार किया जाता है कि भारत को आजादी गांधी और कांग्रेस की बदौलत, शान्ति और अहिंसा के रास्ते से मिली-

'दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल / साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल....'

लेकिन क्या वाकई आजादी बिना खड्ग-बिना ढाल के मिल गई? क्या सत्ता का हस्तांतरण वाकई शान्तिपूर्ण था?

इतिहास इसे गलत साबित करता है। लेकिन ऐसा प्रचार इसलिए किया जाता है ताकि जनता संघर्ष और बलिदानों की अपनी परम्परा को भूल जाये। ताकि लोग यह भ्रम पाले रहें कि आज का शोषण पर टिका समाज भी एक दिन शान्तिपूर्ण ढंग से बदल जायेगा।

15 अगस्त के मौके पर आजादी की लड़ाई पर एक नजर डालें तो हम देखते हैं कि मेहनतकश जनता के जबर्दस्त संघर्षों और अकूत बलिदानों के बिना आजादी मिल ही नहीं सकती थी। हम यहां ज्यादा पीछे की चर्चा नहीं करेंगे, केवल 1947 के ठीक पहले के कुछ वर्षों की ही परिस्थितियों का वर्णन करेंगे।

मजदूरों की हड़तालों का सैलाब

दूसरे महायुद्ध के 1945 में समाप्त होने तक भारत में मजदूर वर्ग एक संगठित शक्ति बन चुका था और अपनी आर्थिक तथा राजनीतिक - दोनों तरह की मांगों के लिए उसका संघर्ष तेज होता जा रहा था। 1945 के बाद के महीनों में हड़ताल की लहर करीब-करीब सारे उद्योगों में फैल गई। उस वर्ष देश में 850 हड़तालें हुईं जिनमें आठ लाख मजदूरों ने हिस्सा लिया और 38 लाख काम के दिन नष्ट हुए। पुलिस के साथ संघर्ष में पचासों मजदूर मारे गये, हजारों गिरफ्तार कर लिये गये।

जनवरी 1946 में हड़तालों की लहर और उमड़ी। कारखाने के मजदूरों के अलावा आफिसों के कर्मचारी भी हड़ताल के मैदान में उतरे। फिर 1946-47 में मजदूर-आन्दोलन ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया। 'हर जोर-जुल्म की टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है' की आवाज सारे देश में गूंज रही थी। 1946 की गर्मियों में रेलवे हड़ताल भड़की जो अगस्त-सितम्बर तक पूरे देश में फैल गई। कई दिन तक कोई ट्रेन अपनी जगह से हिली नहीं। अगस्त 1946 में ही कानपुर के ब्रिटिश मालिकों की कपड़ा मिलों और चमड़ा कारखानों के 30,000 मजदूरों ने हड़ताल की। फिर गिरिडीह के कोलियरी मजदूरों, बंगाल के गोदी मजदूरों, कलकत्ता कारपोरेशन के कर्मचारियों तथा नागपुर के कपड़ा मिल मजदूरों की हड़तालें हुईं। नवम्बर में कोयम्बटूर में कपड़ा मिलों में आम हड़ताल हुई। ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं से छुटटी पाने के लिए एक कपड़ा मिल ने 3500 मजदूरों को बर्खास्त कर दिया था। इसके खिलाफ निकाले जा रहे जुलूस पर गोली चलाकर पुलिस ने 20 मजदूरों को मार डाला। इसके विरोध में कोयम्बटूर के सभी मिल मजदूरों ने आम हड़ताल कर दी।

1946 के पहले नौ महीनों में सारे देश में 1466 हड़तालें हुईं जिनमें 17 लाख 37,000 मजदूरों ने हिस्सा लिया और लगभग 90,00,000 काम दिन नष्ट हुए। पूरे 1946 में 19,62,000 मजदूरों ने हड़ताल की जिससे एक करोड़ 27 लाख काम के दिन नष्ट हुए।

कल-कारखानों में हड़ताल की इतनी ऊंची लहर पहले कभी नहीं आई थी। प्रायः सभी उद्योगों के मजदूर इसमें शामिल हुए। मजदूर हड़तालों की यह लहर 1947 में भी जारी रही। 1947 के शुरू के महीनों में कानपुर, गुजरात, इंदौर, महाराष्ट्र, मद्रास आदि में विशाल हड़तालें हुईं। इन हड़तालों की खासियत यह थी कि इनमें मजदूरों के साथ साथ छात्र, दस्तकार, किरानी, छोटे दुकानदार आदि भी शामिल हो गये थे। जगह-जगह मजदूरों और छात्रों ने पुलिस के हमलों का आमने सामने मुकाबला किया और अनगिनत कुर्बानियां दी।

सेना में बढ़ता असंतोष और नौसेना विद्रोह

1946 में ही सेना में बढ़ते असंतोष और फिर नौसेना के जबर्दस्त विद्रोह से अंग्रजों की समझ में आ गया कि अब भारत में उनका और टिके रहना मुश्किल है। जिस फौज और पुलिस के दम पर अत्याचारी हुकूमत कायम हो, जब उसी में बगावत होने लगे तो बड़ी-बड़ी हुकूमतों की जड़ें हिल जाती हैं।

जनवरी 1946 में बम्बई में वायुसेना के सैनिकों ने हड़ताल कर दी। उसके कुछ ही दिन बाद फरवरी में नौसेना में विद्रोह भड़क उठा। 18 फरवरी को बम्बई के पास 'तलवार' नाम के जहाज के नाविकों ने हड़ताल की जो अगले दिन बम्बई में मौजूद नौसेना के सभी बीस जहाजों पर फैल गई। हड़तालियों की संख्या 20,000 तक पहुंच गई। नाविकों ने शहर में जुलूस निकाला। उनके प्रदर्शनों में तीन झंडे एक साथ चलते थे - कांग्रेस का तिरंगा, मुस्लिम लीग का हरा और बीच में कम्युनिस्ट पार्टी का लाल झण्डा। उनके नारे थे - 'जयहिन्द, इंकलाब जिंदाबाद, हिन्दू-मुस्लिम एक हों। ब्रिटिश साम्राज्यवाद मुर्दाबाद। आजाद हिंद फौज के तथा राजनीतिक कैदियों को रिहा करो, आदि।' हड़ताल कराची, मद्रास और विशाखापत्तनम के नौसैनिकों में भी फैल गई। जहाजों की मरम्मत करने के वर्कशापों और गोदी मजदूरों ने भी हड़ताली नाविकों का साथ दिया। नाविकों की बैरकों को घेरने के लिए भेजे गये भारतीय सैनिको ने गोली चलाने से इंकार कर दिया। उसके बाद भारतीय नौसैनिकों और ब्रिटिश सैनिकों के बीच दो दिन युद्ध हुआ।

ऐसे ही समय में कांग्रेस ने अपने असली चरित्र का परिचय दिया। नाविकों द्वारा मदद की अपील को कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेताओं ने न केवल ठुकरा दिया बल्कि उनके काम की निन्दा करते हुए हथियार डाल देने और आत्मसमर्पण करने का हुक्म दिया। नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश सैनिकों ने नौसैनिकों और उनका साथ देने वाले बंबई के मजदूरों पर भयंकर दमन चलाया। सैकड़ों लोग गोलियों से भून डाले गये। खुद सरकारी आंकड़ों के अनुसार 21-23 फरवरी के बीच तीन दिन में 250 आदमी मारे गये थे।

किसान विद्रोह

क्रान्ति की इस लहर से किसान भी अछूते नहीं थे। 1945 के अन्त और 1946 के आरम्भ से उन्होंने उग्र आन्दोलन शुरू कर दिये। उनका संग्राम जोर पकड़ता गया और कम से कम तीन संघर्ष - तेभागा, तेलंगाना और पुन्नप्रा-वायालार - ऐतिहासिक संघर्ष बन गये।

तेलंगाना उस समय निजाम के शासन वाली हैदराबाद रियासत का अंग था। किसानों ने जमीदारों और निजाम के शासन के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया। जमीदारों को मार भगाकर उनकी जमीन भूमिहीन किसानों और खेत मजदूरों में बांट दी। 1946-47 के किसान आन्दोलनों में तेलंगाना का विद्रोह सबसे ऊंचे स्तर का और संगठित था। 1947 के बाद देश के नये शासकों ने भी किसानों का पक्ष न लेकर हैदराबाद के निजाम और जमींदारों तथा रजाकारों का पक्ष लिया जिसकी वजह से कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में किसान 1951 तक सशस्त्र संघर्ष चलाते रहे। कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा क्रान्तिकारी रास्ते को ही छोड़ देने के बाद यह शानदार आन्दोलन पराजय में समाप्त हुआ।

पुन्नप्रा और वायालार त्रावनकोर रियासत के, जो अब केरल में है, दो स्थान हैं। वहां किसानों और मजदूरों ने मिलकर सामंती शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष किया था। 1945 में शुरू हुआ आन्दोलन 1946 तक पूरे इलाके में फैल गया। पुलिस के साथ संघर्ष में 100 मजदूर एक ही दिन मारे गये। पूरे इलाके को फौज के हवाले कर दिया गया था। 27 अक्टूबर को फौज ने आन्दोलनकारियों के मुख्य डेरे को घेरकर सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। उस घटना में कुल कितने लोग मारे गये थे, इस पर आज तक परदा पड़ा हुआ है।

1946 में ही बंगाल के बटाईदार किसानों ने एलान किया कि वे फसल का दो-तिहाई हिस्सा लेंगे और जोतदारों-जमीन्दारों को सिर्फ एक-तिहाई हिस्सा देंगे। बंटवारे के इसी अनुपात के कारण यह तेभागा आन्दोलन कहलाता है। बंगाल के 28 में से 15 जिलों में फैले इस आन्दोलन में 50 लाख से ज्यादा किसानों ने हिस्सा लिया। कंधे से कंधे मिलाकर लड़ने के दौरान इसमें हिन्दू-मुसलमान और आदिवासियों की अटूट एकता कायम हुई जिसका असर साम्प्रदायिक सौहार्द के उपदेशों से ज्यादा गहरा था। उन्होंने जोतदारों, उनके गुंडों और पुलिस से जमकर लोहा लिया। यह आन्दोलन 1947 के फरवरी-मार्च तक चलता रहा। इसके अलावा पंजाब, संयुक्त प्रदेश, बिहार ओर महाराष्ट्र में भी किसान आन्दोलन जोरों पर था।

ऊपर हमने बहुत थोड़े में यह दिखाने की कोशिश की है कि 15 अगस्त 1947 के ठीक पहले क्या परिस्थिति थी। जनता के सबसे जुझारू तबके पूरी तरह जाग उठे थे और भीषण संघर्षों से गोरी हुकूमत के सिंहासन को झकझोर रहे थे। इसके पीछे जनता के निरन्तर जारी आन्दोलनों का लम्बा इतिहास था जिसकी हमने यहां चर्चा नहीं की है।

अंग्रेजों ने समझ लिया था कि वह अब ज्यादा दिन इस देश पर राज नहीं कर पायेंगे। इसलिए उन्होंने अपने आर्थिक हितों की हिफाजत के लिए यही मुनासिब समझा कि अपने बिरादर काले अंग्रेजों यानी भारतीय पूंजीपतियों के हाथों सत्ता सौपकर चले जायें। वरना अगर जनता बगावत करके मजदूर-किसानों का राज कायम कर देती तो न तो एक भी ब्रिटिश कम्पनी यहां बचती और न ही उनकी लूट जारी रखने का इंतजाम हो पाता जैसा कि आज तक हो रहा है। वैसे दूसरे महायुद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद इतना कमजोर हो चुका था कि उसके लिये भारत जैसे विशाल देश को गुलाम बनाकर मुश्किल हो रहा था। लेकिन यह उनके जाने का मुख्य कारण नहीं था।

इतिहास के कुछ जरूरी सबक

1947 की अधूरी, विकलांग आजादी अंग्रेजों ने भारतवासियों को उनकी अहिंसा से प्रभावित होकर तोहफे में नहीं दी थी। जनता ने अकूत कुर्बानियां देकर और अपने खून से इस धरती को लाल करके इसे हासिल किया। हमेशा की तरह उपनिवेश्वाद की पराजय और राजनीतिक स्वतंत्रता के इस नये दौर को लाने में वर्ग संघर्ष ने ही निर्णायक भूमिका निभायी। इसके बाद भी हमें बार-बार इसके ठीक उल्टी बात बताई जाती है। क्यों? ताकि हम यह भूल जायें कि दुनिया में कुछ भी बिना लड़े, बिना कुर्बानी दिये हासिल नहीं किया जा सकता। जिस तरह अंग्रेजों का अहिंसा से हृदय परिवर्तन नहीं हुआ था, बल्कि जनता के उग्र संघर्षों ने उन्हें जाने के लिए मजबूर किया था, उसी प्रकार आज के शोषक और अत्याचारी कभी भी अपने आप लूट-पाट बंद नहीं करेंगे। उनको मेहनतकश जनता के संगठित संघर्ष से ही उखाड़ फेंका जा सकेगा। मजदूरों-किसानों को सही-सच्ची-संपूर्ण आजादी प्राप्त करने के लिए एक नई समाजवादी क्रान्ति का ज्वार पैदा करना ही होगा।

15 अगस्त हमें इसी बात की याद दिलाता है।

कौन आज़ाद हुआ

कौन आज़ाद हुआ
किसके माथे से गुलामी की सियाही छूटी
मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी का
मादरे-हिन्द के चेहरे पे उदासी है वही
कौन आजाद हुआ....

खंजर आज़ाद है सीने में उतरने के लिए
मौत आजाद है लाशों पे गुज़रने के लिए
कौन आज़ाद हुआ....

काले बाज़ार में बदशक्ल चुड़ैलों की तरह
कीमतें काली दुकानों पे खड़ी रहती है
हर खरीदार की जेबों को कतरने के लिए
कौन आज़ाद हुआ....

कारखानों में लगा रहता है
सांस लेती हुई लाशों का हुजूम
बीच में उनके फिरा करती है बेकारी भी
अपने खूंख्वार दहन खोले हुए
कौन आज़ाद हुआ....

रोटियां चकलों की कहवायें है
जिन्हें सरमाए के दल्लालों ने
नफाखोरी के झरोखों में संजा रक्खा है
बालियां धान की गेहूं के सुनहरे गोशे
मिस्रो-यूनान के मजबूर गुलामों की तरह
अजनबी देश के बाज़ारों में बिक जाते है
और बदबख्त किसानों की तड़पती हुई रूह
अपने अफलास में मुंह ढांप के सो जाती है
कौन आज़ाद हुआ....

● अली सरदार जाफरी

स्वत्वाधिकारी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज से प्रकाशित एवु उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : मुद्रण प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : डा. दूधनाथ । सम्पादकीय कार्यालय : द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ। सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ